

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186279

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H333.8 Accession No. O.H. 142

Author D 448
देसाई, नारायण

Title भूतान - कायेदण. 1955

This book should be returned on or before the date
last marked below.

भूदान-अष्टादश



नागायण देसाई

अ० भा० सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्रकाशक

अ० वा० सहस्रबुद्धे, मंत्री

अखिल भारत सर्व सेवा-संघ

वर्धा (म० प्र०)

●
Checked 19

दूसरी बार : १५,०००

जुलाई १९५५

मूल्य : आठ आना

मुद्रक

सम्मेलन मुद्रणालय

प्रयाग

प्रस्तावना

इधर कई दिनों से एक ऐसी पुस्तिका की माँग थी, जिसमें भूदान-यज्ञ-आन्दोलन की जानकारी सिलसिलेवार, प्रामाणिक रूप से दी गयी हो। इसके साथ यह भी आवश्यक था कि जानकारी संक्षिप्त होते हुए भी पर्याप्त हो और सरल तथा रोचक भाषा में लिखी गई हो। यह माँग इस पुस्तिका से बहुत बड़ी हद तक पूरी होती है। पिछले चार वर्षों का वृत्तांत प्रामाणिक और हृदयंगम रीति से इस पुस्तिका में लिखा गया है। वर्णन में सजीवता है; तथा आन्दोलन की सैद्धान्तिक और वैचारिक भूमिका का एवं साम्ययोगी क्रान्ति की प्रक्रिया का विवेचन सारगर्भित और मूलग्राही है।

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि वह जितनी कार्यकर्ताओं के लिए उपयोगी है, उतनी ही पढ़े-लिखे नगरवासियों के लिए तथा ग्रामीण जनता के लिए भी उपादेय है। कार्यकर्ताओं के शिविरों में तथा निर्माण के केन्द्रों में इसका पठन और अध्ययन विशेष रूप से होना चाहिए।

पुस्तिका के लेखक भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के एक होनहार तरुण, निष्ठावान् कार्यकर्ता और प्रतिभावान् प्रवक्ता हैं। देश के जिन युवक-युवतियों ने भूदान-यज्ञ-आन्दोलन को तरुणार्ई के उत्साह और तेज से समुद्ध किया है, उनमें उनका एक प्रमुख स्थान है। पुस्तिका में जो कुछ उन्होंने लिखा है, उसके पीछे जितनी उनकी निष्ठा है, उतना ही प्रत्यक्ष अनुभव भी है। जो कोई भूदान-यज्ञ-आन्दोलन की सांगोपांग जानकारी निरंतर अपने संग्रह में रखना चाहता हो, उसे यह पुस्तिका अवश्य रखनी चाहिए।

मुरारपुर, गया

६-३-१९५५

—दादा धर्माधिकारी

अध्ययन के सूत्र

सिंहावलोकन [विनोबा]	५
यज्ञ के अघ्वर्यु	२९
आन्दोलन का क्रमिक विकास	३५
वैचारिक-भूमिका—१	५४
वैचारिक-भूमिका—२	६७
थोड़ा-सा शंका-समाधान	८५
भूमि सम्बन्धी कुछ आँकड़े	१०३
व्यावहारिक पहलू	१०८
सबको निमंत्रण	१२४
परिशिष्ट :	
१. भूदान प्राप्ति आदि के आँकड़े	१३९
२. भूदान यज्ञ का दानपत्र	१४१
३. संपत्ति-दान यज्ञ का दानपत्र	१४२
४. सर्वोदय के सप्त ग्रंथ	१४३
५. सर्वोदय स्वाध्याय योजना	१४४

सिं हा व लो क न

[विनोबा]

अपना यह देश बहुत बड़ा है। यहाँ के किसी भी लड़के से पूछा जाय कि तुम कितने भाई हो, तुम्हारे देशवासी कितने हैं, तो वह छत्तीस करोड़ का आँकड़ा सुनायेगा। सिवा चीन के किसी भी देश के नागरिक की जबान पर इतना बड़ा आँकड़ा नहीं होगा। यूरोप के लोगों से पूछा जाये, तो कोई कहेगा एक करोड़, कोई कहेगा दो करोड़, कोई कहेगा चार करोड़। इस तरह छोटे-छोटे आँकड़े वहाँ पर सुनाये जाएंगे। पर, हम तो इतने भाई हैं, इतना विशाल हमारा वैभव है। यह सब क्या है? हमें इस पर सोचना चाहिए। यह इसलिए है कि जैसे असंख्य नदियाँ समुद्र में जाती हैं और समुद्र सब नदियों को प्रवेश देता है, किसी को इनकार नहीं करता, उसी तरह भरत-भूमि ने दुनिया की सब कौमों का प्रेम से स्वागत किया और सबको प्रवेश दिया। मैं एक मिसाल देता हूँ। पारसी लोग ईरान से आश्रय के लिए यहाँ आये। यहाँ के सहृदय लोगों ने उन्हें आश्रय दिया। उनके जो रीति-रिवाज थे, उनके अनुसार वे अपनी उपासना करते थे, अपना भक्ति-मार्ग चलाते थे। उसमें कोई बाधा हमने नहीं पहुँचायी। आज भी पारसी कौम इस देश को अपना देश समझती है और यहाँ पर अपने को सुरक्षित पाती है। मैं एक मजेदार बात सुनाऊँगा। यहाँ पर जो पारसी आये, वे देवों की निंदा और असुरों की प्रशंसा करते हुए

आये ! फिर भी यहाँ के लोगों ने कोई गलतफहमी नहीं होने दी । यहाँ पर तो देवों की स्तुति और असुरों की निंदा की जाती है । पारसियों में असुरों की स्तुति और देवों की निंदा की जाती है । उनकी भाषा में असुर का अर्थ ही भगवान् है । शब्द उल्टा पड़ता है, परन्तु अर्थ वही है । भगवान् को वे बड़ा भारी असुर अहुर-मज़्द, कहते हैं और देवों को कहते हैं भूत या पिशाच, जो भ्रान्त-मनुष्यों को तकलीफ दिया करते हैं । ऐसे देवों की उन्होंने निंदा की है । परन्तु यहाँ के लोगों ने अर्थ ग्रहण किया और शब्दों को सहन किया । यह बहुत बड़ी बात है । पारसी कौम, जो यहाँ पर आयी, वह आक्रमणकारी बन कर नहीं आयी । वे जब यहां आये, तो उनके पास कोई ताकत नहीं थी कि जिसके बल पर वे आश्रय माँगे । फिर भी वे आश्रय के लिए यहाँ आये और यहाँ के लोगों ने आश्रय दिया । भारत ने उनके भरण-पोषण का जिम्मा उठा लिया । यहाँ की जनता तो यहाँ के ज्ञानियों के विचारों पर ही चलती थी । इसीलिए हमारा विकास हुआ ।

महा-मानवों का समुद्र : भारत

आजकल यहाँ पर कई 'वाद' चलते हैं । वाद तो कई प्रकार के हो सकते हैं । बिहार-बंगाल का वाद चल रहा है । परन्तु बिहार वाले यह माँग नहीं करते कि हम अपना राष्ट्र बनाना चाहते हैं और भारत से अलग होना चाहते हैं । न बंगाल वाले यह माँग करते हैं कि हम अपना अलग राष्ट्र बनाना चाहते हैं । हम सब भारतीय हैं, भारतवासी हैं और एक राज्य में रहना चाहते हैं । ये जो दूसरे विवाद होते हैं, वे मामूली फुटकर वाद हैं ।

उनके पीछे अभिमान की वृत्ति नहीं है। यद्यपि आजकल कुछ अभिमान हो गया है और कुछ कटुता भी पैदा की गयी है, फिर भी वहाँ उनमें अभिमान की वह वृत्ति नहीं है, जो यूरोप के देशों में होती है। फ्रांस और जर्मनी के बीच कोई ऐसा पहाड़ नहीं है जो दोनों को अलग करे। परन्तु उनको ऐसे पहाड़ की आवश्यकता महसूस होती है। वे दोनों देश बिल्कुल नजदीक रहनेवाले हैं। उनकी लिपि एक है, धर्म एक है, भाषाएँ भी काफी मिलती-जुलती हैं। उनके बीच शादियाँ भी हो सकती हैं। परन्तु फ्रांस के लोगोंने तय किया कि हमारा एक छोटा-सा अलग देश है और जर्मनी के लोगों ने तय किया कि हमारा जर्मनी एक छोटा-सा देश है। फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैण्ड के बीच जो लड़ाइयाँ हुईं, वे राष्ट्रीय लड़ाइयाँ हुईं। वे लड़ाइयाँ राष्ट्रीय मानी जाती हैं, 'सिविल-वार' या आपस की लड़ाइयाँ नहीं। लेकिन हिंदुस्तान में जो लड़ाइयाँ हुईं, मराठों की उड़ीसावालों के साथ या रजपूतों के साथ, ये 'सिविल वार्स' (अन्तर्गत लड़ाइयाँ) मानी जाती हैं। ऐसी ही हमारी लड़ाई है। यह कुछ अभिमान की चीज है कि यहाँ पर जो लड़ाइयाँ हुईं, ये आपस-आपस की लड़ाइयाँ मानीं गयीं। बाहर के लोगों ने भी वैसा ही माना और यहाँ के लोगों ने भी माना कि वे आपस-आपस की लड़ाइयाँ थीं। रूस को छोड़कर यूरोप के बराबर बड़ा हिंदुस्तान देश है। यूरोप से कुछ कम विविधता यहाँ पर नहीं है। यहाँ कई भाषाएँ हैं, जैसे यूरोप में हैं। वहाँ पर तो एक ही लिपि है, परन्तु यहाँ अनेक लिपियाँ हैं। वहाँ पर एक ही धर्म है, लेकिन यहाँ अनेक धर्म हैं। इतना अधिक फर्क होते हुए भी हम अपने को एक देश के निवासी मानते हैं और वहाँ के लोग अपने को

एक खंड के निवासी मानते हैं। वहाँ के कुछ देश तो हमारे प्रांतों के एक हिस्से के जितने छोटे हैं, फिर भी वे अपने को अलग राष्ट्र मानते हैं, क्योंकि हर एक की अपनी एक अलग भाषा है। हिंदुस्तान में वैसी बात नहीं सुनी जाती। यहाँ के समाज-शास्त्र में एक व्यापक बुद्धि है। इसलिए रवीन्द्रनाथ ने गाया है कि यह— 'महा-मानवों का समुद्र' है। इसमें अनेक लोग आये और अब भी आयेंगे। हमारे देश में विविधता होते हुए भी एकता है।

एकता अंग्रेजों की बदीलत नहीं

यह एकता अंग्रेजों ने नहीं बनायी है, जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं। अंग्रेज तो चाहते थे कि इस देश के अधिक-से-अधिक टुकड़े हो जायें और उन्होंने वैसी कोशिश भी की। वे लंका को अलग कर सके, तो उन्होंने अलग किया। ब्रह्मदेश को अलग कर सके, तो अलग किया। हमने भी इसका कोई विरोध नहीं किया, क्योंकि हम मानते थे कि अपने नजदीक वाले देश अगर अलग रहना चाहते हैं, तो रहने दो। अंग्रेजों ने तो और भी भेद बढ़ाये। जैसे हिंदू-मुसलमानों के। पहले से कुछ भेद तो था ही, परन्तु उन्होंने उसे बढ़ाया और उसके परिणामस्वरूप हिंदुस्तान के दो हिस्से बने। यह तो यहाँ की सभ्यता है, जिसके कारण हमने इसे एक देश माना है। अंग्रेजों ने तो हिंदुस्तान और पाकिस्तान बनाया। कुछ लोगों का यह खयाल है कि अंग्रेजों के कारण यहाँ पर अंग्रेजी भाषा चली और हिंदुस्तान के सब प्रान्तों के लोगों ने अंग्रेजी सीख ली, जिससे वे एक-दूसरे के साथ बातचीत कर सके और इसी से एकता पैदा हुई, परन्तु यह

विचार ही गलत है। हम तो वेदों के जमाने से एकता की भावना पाते हैं, जब कि आमदरप्राप्त के कोई साधन मौजूद नहीं थे। उस समय के ऋषियों के अनुसार सिंधु से लेकर हिमालय की गुहा तक एक समूचा देश माना गया। यहाँ एक सभ्यता पली। असंख्य यात्री देश के इस सिरे से उस सिरे तक यात्रा करते थे। असंख्य सत्पुरुष हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सद्बिचार का प्रचार करते रहते थे। इसीलिए हमारा एक देश बना है। यह विरासत हमें मिली है। इसलिए हम श्रीमान् हैं।

इतिहास की दी हुई जिम्मेवारी

पर बड़ी विरासत सँभालने के लिए अकल चाहिए। यदि यह अकल नहीं रही तो हमारी जो ताकत है, देश की जनसंख्या और विस्तार; वह ताकत नहीं, हमारी कमजोरी साबित होगी। इसलिए इस देश के इतिहास ने हम पर बड़ी भारी जिम्मेवारी डाली है कि यहाँ पर जो मसले पैदा होंगे, उनका हल हम प्रेम और शान्ति के तरीके से करें। अगर हम इस जिम्मेवारी को नहीं सँभाल सके, तो इस देश की विशालता हमारी कमजोरी साबित होगी और परिणामस्वरूप हमारी आजादी भी नहीं टिकेगी। इतिहास हमें सिखाता है कि इस देश पर दूसरों के जो आक्रमण हो सके, उसका कारण यही है कि यहां के लोगों को यहाँ की विविधता का जो अंदरूनी भान होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। इसके कारण भेद बढ़े, फिरका-परस्ती हुई और एक-दूसरे के साथ विरोध शुरू हुआ। इसीलिए हिंदुस्तान को वर्षों तक गुलाम रहना पड़ा।

शांति और प्रेम का ही एकमात्र तरीका

इसलिए हमारे देश के लिए शान्ति और प्रेम का तरीका अनिवार्य हो जाता है। मैं तो यह कहूँगा कि यह हमारा सद्-भाग्य है कि परमेश्वर ने ऐसी योजना कर रखी है कि हम शांति और प्रेम से ही अपने मसले हल करें। मैंने इसे 'सद-भाग्य' कहा है, क्योंकि अगर हम अपने मसले शांति और प्रेम से हल न कर सकें, तो हमारी ताकत और दौलत नहीं बढ़ सकती, ऐसी योजना परमेश्वर ने की है। अगर हिंदुस्तान फौजी ताकत बढ़ाने की सोचेगा, तो वह बिलकुल ही कमजोर हो जायगा; गुलाम हो जायगा। उसे अमेरिका की शरण में जाना पड़ेगा या रूस की शरण में जाना पड़ेगा। किसी-न-किसी की शरण में जाना पड़ेगा। फिर हम आजाद नहीं रह सकेंगे। इसलिए मैं इसे बड़ा भाग्य मानता हूँ कि इस देश के लिए यह अनिवार्य है कि सारे देश के मसले शांति और प्रेम के तरीके से हल किये जावें।

जैसे इस देश के लिए यह अनिवार्य है कि देश के मसले शांति के तरीके से हल किये जावें, वैसे ही विज्ञान के लिए भी यह अनिवार्य है कि दुनिया अपने मसलों को हल करने के लिए शांति और प्रेम का तरीका ढूँढ़े। आज तो जो शस्त्र हैं, वे मानव के हाथ में नहीं हैं। शस्त्र-शक्ति में चाहे जितनी बुराइयाँ हों, परन्तु यदि मानव के नियंत्रण में रहें, तो वे कुछ लाभदायी भी साबित हो सकती हैं। परन्तु आज विज्ञान का इतना विकास हुआ है कि शस्त्र-शक्ति मानव के हाथ में रही ही नहीं है। मान लीजिये कि

यहाँ पर किसी ने नबीड़ी पीकर बिना बुझाये फेंक दी, जिसके कारण घर को आग लग गयी, तो उसे बुझाने की शक्ति उस शस्त्र में नहीं होती। उसने जानबूझ कर तो आग लगायी नहीं, फिर भी आग तो लगायी ही। उसके हाथ में आग लगाने की शक्ति है और वह आसानी से घर को आग लगा सकता है, परंतु आग बुझाने की शक्ति उसके हाथ में नहीं है। विज्ञान के जमाने में जो आग लूगती है, उस आग की लपटों से न सिर्फ कुछ घर, बल्कि देश के देश जल जाते हैं। मानवता का और मानव-जाति का समूल उच्छेद करने की शक्ति विज्ञान ने निर्माण की है। इसलिए दुनिया के लिए यह जरूरी है कि दुनिया के जो मसले हैं, वे शांति और प्रेम के तरीके से हल हों। ऐसा आग्रह न हो कि एक देश में जो रीति या तरीका चले, वही रीति या तरीका सब देशों में चले। आग्रह की हमारी वृत्ति नहीं है। हर एक देश के अपने भिन्न-भिन्न गुण होते हैं। इसलिए हर देश में एक ही प्रकार की राज्य-व्यवस्था और समाज-रचना चलनी चाहिए, ऐसा आग्रह हम न रखें। हर एक देश अपनी खास परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग समाज-रचना कर सकता है, ऐसी अनाग्रही वृत्ति हम रखेंगे, तो दुनिया में शांति रहेगी। नहीं तो सारी दुनिया के लिए अशांति की नौबत आयेगी। आज हिंदुस्तान का जो अंतर्राष्ट्रीय रूप आया है, हिंदुस्तान का जो स्वभाव है और हिंदुस्तान की जो ऐतिहासिक जिम्मेवारी है, उन सबके कारण हमारे लिए शांति का तरीका अनिवार्य है, और सारी दुनिया के लिए भी विज्ञान के कारण शांति का तरीका अनिवार्य है। हमारे लिए तो अपनी परिस्थिति के कारणों से, वही विज्ञान के

कारण सारी दुनिया के लिए अनिवार्य हो गया है। अपने मसले हल करने के लिए शांति का ही तरीका अब सबको अख्तियार करना पड़ेगा। हमें यह देखना होगा कि आग न लगने पाये और लगे तो बुझ सके।

लोहिया के भारतीय परंपरा के उद्गार

जब इंदौर में गोली चली, तब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने कहा कि स्वराज्य में इस तरह गोली नहीं चलनी चाहिए; और स्वराज्य में आंदोलन चलाने वालों पर भी यह जिम्मेवारी है कि वे अपने पर जब्त रखें, अंकुश रखें, हिंसा न होने दें। सरकार वालों को भी यह वृत्ति रखनी चाहिए कि गोली न चले। इसलिए हमें खुशी है कि जब त्रावणकोर-कोचीन में गोली चली, तब राम-मनोहर लोहिया की आत्मा पुकार उठी। यद्यपि वहाँ पर सोशलिस्ट पार्टी की ही सरकार थी, फिर भी उनकी आत्मा की पुकार प्रकट हुई। उस पर फिर चर्चा हुई। उसके पक्ष में और विपक्ष में जो बातें की गयीं, उन सबमें मैं नहीं पड़ना चाहता। परंतु उनके हृदय से स्वयंस्फूर्ति से जो उद्गार निकला, यद्यपि वहाँ पर उन्हीं की सरकार थी, उस उद्गार को हम भारतीय उद्गार कहते हैं और उसके साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति है।

हिंसा के बारे में एक गलत खयाल

आजकल यह जो खयाल हुआ है कि हिंसा से सारे मसले हल हो सकते हैं और जल्द हल हो सकते हैं, वह गलत है। हिंसा

से सारे मसले न तो हल हो सकते हैं और न जल्द ही हल हो सकते हैं। मसले हल हुए, ऐसा आभास होता है। अगर उस आभास से हमने मान लिया कि मसले हल हो गये, तो वह गलत होगा। मान लीजिए कि कहीं गंदगी पड़ी है और देर लगेगी, इस खयाल से भाड़ू नहीं लगायी गयी। उस पर जाजम बिछा दिया और मान लिया कि स्वच्छता हो गयी। लोग बैठ गये और सभा आरंभ हुई। फिर नीचे से एक बिच्छू निकला और उसने किसी को काटा, और सभा समाप्त ! भाड़ू लगाने में देर होगी, यह सोच कर गंदगी को ऊपर से ढक देने से स्वच्छता नहीं हो जाती। स्वच्छता के लिए कुछ करना ही होता है। संस्कृत में एक कहावत है कि बच्चा गेहूँ बोने गया और उसने एक दाना बोया। एक दिन राह देखी, नहीं उगा, दूसरे दिन, तीसरे दिन, चौथे दिन राह देखी, फिर भी नहीं उगा। आखिर पाँचवें दिन बाहर जरा-सा अंकुर उठा तो बच्चे को लगा कि जरा-सा अंकुर फूटने में इतनी देर क्यों हुई ? उसने उसे बढ़ाने के लिए ऊपर से खींच लिया। पर जब दूसरे दिन देखा तो वह अंकुर क्षीण हो गया था। ऊपर से खींचने से अंकुर नहीं बढ़ सकता। उसके लिए तो समय लगता है। वह लगना भी चाहिए। उसमें कम समय लगे ऐसी जो कोशिश चलती है, वह टेढ़ी कोशिश होती है। उससे तो सारा मामला ही टेढ़ा हो जाता है। इसलिए हिंसा से मसले जल्द हल होते हैं, यह खयाल भी गलत ही है।

देह-प्रधान तालीम के नतीजे

आजकल लोगों का हिंसा पर इतना विश्वास है कि वे

मानते हैं कि हिंसा से ही सारे मसले हल हो सकते हैं। यह खयाल गलत है। घर में भी माँ-बाप बच्चे को तमाचा लगाते हैं। इसका मतलब यह है कि उनका प्रेम पर, अपनी समझाने की शक्ति पर उतना विश्वास नहीं है, जितना कि तमाचे पर है। स्कूल में भी यही होता है। बच्चा देर से आता है, तो उसे नियमितता सिखाने के लिए गुरु छड़ी मारता है। फिर क्या होता है? बच्चा नियमित स्कूल में आने लगता है। तब वे कहते हैं कि देखो, काम हो गया। छड़ी का स्पर्श जहाँ उसकी देह को हुआ, वहाँ उसे सद्गुण की प्रेरणा हुई! अतः सद्गुण की प्रेरणा के लिए छड़ी का स्पर्श, डंडे का स्पर्श, कितना लाभदायी है! ऐसा ही कहा जाता है। परंतु व्याज के कारण मूल पूंजी गँवायी। छड़ी मारने से बच्चा स्कूल में नियमित तो जाने लगा, परंतु उसके साथ-साथ उसने डर भी सीखा। उसको यह तालीम मिली कि तुम्हें किसी ने मारा तो डरना चाहिए। इस तरह उसने निर्भयता छोड़ी। निर्भयता छोड़कर नियमितता हासिल हुई। निर्भयता की ज्यादा कीमत है या नियमितता की? आपने एक पैसा कमाया और रुपया गँवाया। इससे क्या होता है? बच्चा चंद दिनों के लिए नियमित स्कूल में जाने लगता है, परंतु बाद में दबाव न रहा, तो वह नियमितता भी भूल जायगा, यही संभव है। इसलिए नियमितता भी टिकने वाली नहीं है और साथ-साथ डर तो पैदा हुआ! इस तरह की तालीम खतरनाक है। आज तो यह बच्चा डर के मारे शिक्षक या मातापिता के वश में है, लेकिन कल किसी जालिम के भी वश हो जायेगा। यह जो तालीम है, वह बच्चे को देह-प्रधान बनानेवाली है! उसे सिखाया जाता है कि देह पर खतरा हो,

तो फौरन सामने वाले की शरण में जाना चाहिए। इस तालीम के माने यह हैं कि हम अपने सद्गुणों को खतरे में डालते हैं। आखिर जुल्मी लोगों के पास क्या सत्ता है? यही तो सत्ता है कि वे मार सकते हैं, पीट सकते हैं, धमका सकते हैं। तो फिर इस तालीम से सारा-का-सारा नागरिक-शास्त्र खतम हो जाता है। इसलिए जब हम देखते हैं कि हमारे मसलों के हल होने में देर है, और सोचते हैं कि हिंसा करने से मसले जल्द हल हो जायेंगे, तो यह एक भ्रम ही है। इस भ्रम में अनादि काल से लोग पड़े हैं। दस हजार साल से हिंसा के प्रयोग हुए हैं और एक हिंसा से दूसरी हिंसा की तैयारी होती है, हिंसा की प्रक्रिया होती है, ऐसा अनुभव आया है। लेकिन फिर भी मनुष्य मान लेता है कि हिंसा की लड़ाई में हम इसलिए नहीं हारें कि हिंसा के तरीके में ही दोष है, बल्कि इसलिए कि हममें हिंसा-शक्ति कम थी! मनुष्य इस तरह मान लेता है। शस्त्रास्त्र की लड़ाई में जो हारते हैं, वे यह नहीं समझते कि हिंसा में कोई शक्ति नहीं है, बल्कि वे तो यह समझते हैं कि हम काफी हिंसक नहीं थे; इसलिए ज्यादा शक्ति बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए। फिर जो हारा हुआ होता है, वह शस्त्रास्त्र बढ़ाने की कोशिश करता है और फिर जीतता है। इसके बाद जो हारता है, वह भी शस्त्रास्त्र बढ़ाता है।

युद्ध की गंगोत्तरी हमारे ही घर में

इस तरह एक-दूसरे को देख कर हिंसा बढ़ाते-बढ़ाते हम आज 'टोटलवार' संकुल-युद्ध तक आये हैं। अब एक व्यक्ति की या

एक जमात की दूसरे व्यक्ति या जमात के साथ लड़ाई नहीं चलती। अब तो एक राष्ट्र-समूह की दूसरे राष्ट्र-समूह के साथ लड़ाई चलती है। लेकिन इस युद्ध का उद्गमस्थान, इस युद्ध की गंगोत्तरी कौन-सी है, जहाँ से यह गंगा बह निकली है? ऐटम बम या हायड्रोजन बम तक जो मामला बढ़ा है, उसका आरंभ कहाँ से हुआ? उसका आरंभ परमप्रिय माता-पिता और गुरु से हुआ है, जिन्होंने अपने बच्चों को सद्गुण सिखाने के वास्ते मारने-पीटने का तरीका अस्तित्वार किया। ऐटम और हायड्रोजन बम की गंगोत्तरी वे ही हैं। अगर माता-पिता और गुरु बच्चों को ऐसी तालीम दें कि यदि हमारी बात तुम्हें जँच जाय तभी उसे मानना, न जँचे तो न मानना, तब देश बचेगा। इसी तालीम से हम विचार-प्रधान बनेंगे। जो बात जँचती है, वही माननी चाहिए, जो नहीं जँचती है, उसको नहीं मानना चाहिए। लेकिन आजकल तो उलटा चलता है। बच्चों को सर्वत्र पीटा जाता है। बच्चों को सिखाना चाहिए कि जो बात तुमको नहीं जँचती उस पर अमल मत करो; फिर चाहे कोई तुम्हें मारे या पीटे, तो भी उसकी बात को कबूल मत करना और मार खाते रहना। यह जो मार खाने की शक्ति है, यह जो तितिक्षा, यानी शांति से मार खाने की शक्ति है, यही निर्भयता है। शस्त्रों पर विश्वास रखना निर्भयता का नहीं, डरपोक-पन का लक्षण है। इसीलिए यह जरूरी है कि हम शिक्षण में यह तत्त्व दाखिल करें कि भय के वश में नहीं होना चाहिए। हम बच्चों को दो बातें सिखायें: (१) हम किसी से डरेंगे नहीं; किसी को डरायेंगे नहीं। (२) हम किसी से दबेंगे

नहीं; हम किसी को दबायेंगे नहीं। यही बात गीता ने कही है:—

‘नायम् हन्ति न हन्यते’

—यह न मारता है और न मरता है।

अभय की सबसे पहले आवश्यकता

इसलिए हम ऐसा तरीका अख्तियार करना चाहते हैं कि जिससे मसले हल हो जायँ और अशांति या मनक्षोभ पैदा न हो, वृत्ति में भय न हो। हमारे इतिहास-वेत्ताओं को यह बात मालूम थी। इसलिए हमारे समाज-शास्त्र में एक शब्द था “अभय”। लेकिन आज उसके बदले “लॉ अँड ऑर्डर” (कानून और बन्दोबस्त) आया है। वे यह मानते हैं कि लोग भयभीत हो कर ही क्यों न हों, पर ‘लॉ अँड ऑर्डर’ मानते हैं। इस तरह हमने व्यवस्था-देवी को परमदेवी माना है। हम उसे कहते हैं कि ‘हे देवी, तू परमदेवी है। तू ही हमारा संरक्षण करती है। तू ही हमारा आधार है।’ इस देवी पर इतना विश्वास हो गया है कि नास्तिक लोग भी इसे मानते हैं। कम्युनिस्ट लोग कहते हैं कि हम ईश्वर को नहीं मानते। तो हम उनसे कहते हैं कि आप ईश्वर को तो नहीं मानते, लेकिन उसके बाप को मानते हैं। प्रबन्ध-देवता को तो मानते हैं। कुछ लोग तो कहते हैं कि व्यवस्था करते-करते कुछ लोगों को सफा करना होगा। फिर इस तरह का सफाया करते-करते ऐसी व्यवस्था बनेगी कि जिसमें संघर्ष ही मिट जायगा। संघर्ष तो उनका परम सत्य है ! जब हम पूछते हैं कि संघर्ष मिटेगा तो क्या होगा, तो वे कहते हैं कि फिर तो

सृष्टि के साथ संघर्ष आरंभ होगा। यह सारा विचार ही गलत है। हम भी व्यवस्था की कीमत मानते हैं। अभी हमने आप लोगों को समझाया कि शांत रहिए। परंतु अगर हम समझाने के बदले मार-पीट शुरू कर देते, तो आप शांत तो रहते, लेकिन सुन नहीं पाते; ज्ञान हासिल नहीं कर पाते, क्योंकि वह तो बाहर की शांति हो जाती, अंदर भय रहता। इसलिए वह शांति नहीं कहलाती। क्योंकि अंदर जो उबलता रहता है, वह क्षोभ है। अगर क्षोभ प्रकट न हो और अंदर ही रहे, तो वह ज्यादा खतरनाक होता है। प्रकट हो जाये, तो कोई हर्ज नहीं है। पानी की भाप अंदर दबी रहती है, तो उसकी शक्ति से ट्रेनें भक-भक चलती हैं। क्षोभ प्रकट हो जाये, तो उसमें उतनी ताकत नहीं होती। लेकिन हम उसे अंदर दबाये रखें, तो ज्यादा अनर्थ हो जाता है। आज आपने यहाँ पर शांति इसलिए रखी कि हमने समझाया था, धमकाया नहीं। लेकिन हम डर पैदा करके शांति स्थापित करें, तो व्यवस्था-देवी, देवी नहीं रहती है, वह तो व्यवस्था-राक्षसी बन जाती है। इस राक्षसी के पेट में इतनी अव्यवस्था होगी कि उसकी अपेक्षा बाहर की अव्यवस्था हमें मंजूर करनी पड़ेगी। इसलिए व्यवस्था से भी ज्यादा आवश्यक है, 'अभय'।

एक होने की अकल

आज हमने सुना कि भरिया एक बड़ा कुरुक्षेत्र है। यहाँ पर लड़ाइयाँ चलती हैं। दुर्योधन, दुःशासन और कितने कौरव पुत्र यहाँ हैं, हम नहीं जानते। लेकिन यहाँ पर मजदूर रहते हैं। उनसे काम लेना है, हर हालत में काम लेना है, ऐसा सोचा जाता

है। उनसे कोयला निकलवाना है। अगर जमीन से कोयला न निकला, तो देश का मुख काला हो जायगा। इसलिए उनसे काम करवाना है, ऐसा सोचा जाता है। लेकिन मजदूर का मतलब है, श्रमशील। जहाँ श्रमशील होते हैं वहाँ तो शांति होनी ही चाहिए। जहाँ आलसी लोग होते हैं, वहाँ अशांति होनी चाहिए। जहाँ श्रम करने वाले होते हैं, वहाँ तो लक्ष्मी पैदा होती है। परन्तु आज तो इससे उलटी बात हो रही है। जहाँ श्रम करने वाले होते हैं, वहाँ पर दो पक्ष खड़े हो जाते हैं। यह माना जाता है कि उन दोनों के हित भिन्न-भिन्न हैं। एक के दो बनाना, दो के चार बनाना, इस तरह टुकड़े-टुकड़े करना, यह अकल तो दुनिया में सबको हासिल है। परन्तु चार के दो बनाना, दो का एक बनाना, यह अकल हासिल नहीं है। टुकड़े करने की अकल, जिसे गीता ने राजसी-बुद्धि कहा है, जिसके कारण कई शाखाएँ फूटती हैं, इसका उसके साथ मिलता नहीं, उसका इसके साथ मिलता नहीं, यह अकल तो सबको हासिल है। परन्तु सबमें जो समान अंश है, उसको ग्रहण करके सबको उस पर एक करना, यह अकल सूझनी चाहिए।

गुंडों का राज्य क्यों है ?

मुझे बताया गया कि यहाँ पर गुंडों का राज्य चलता है। लेकिन जहाँ गुंडों का राज्य न हो, ऐसी जगह ढूँढ़ने पर भी कहीं नहीं मिलेगी। एक गुंडे वे होते हैं जो गुंडे कहलाते हैं और एक गुंडे वे होते हैं, जो सेनापति कहलाते हैं, कार्यकर्ता कहलाते हैं। सोचने की बात है कि हम सारे शिक्षित लोग अपनी रक्षा का

आधार पुलिस पर, सेना पर रखते हैं। इससे अधिक अनर्थ क्या हो सकता है? इससे अधिक पराधीन दशा कौन सी हो सकती है? और ये सिपाही भी कौन होते हैं? इनमें क्या गुण होते हैं? जिसकी छाती बत्तीस इंच की हो, वह सिपाही बनता है। बस यही है उनका गुण और ऐसों पर हम अपने देश का आधार रखते हैं! और फिर उसके लिए क्या-क्या करना पड़ता है? यह सब सोचना चाहिए। उधर बंबई में शराबबंदी हुई, तो वहाँ पर माँग की गयी कि सेना को उससे मुक्ति मिलनी चाहिए। सेना को शराब की सहूलियत होनी चाहिए। तब हमने सोचा कि रावण की सेना में तो सब लोग शराब पीते थे, परंतु रामजी की सेना में जो बंदर थे, उन्हें शराब की जरूरत नहीं महसूस होती थी। हनुमान को शराब की जरूरत नहीं थी। इसलिए वह सेना, जो राष्ट्र की रक्षक कहलाती है, वह राजसी है या सात्विक है, इस पर सोचना चाहिए। लेकिन हम तो गुंडों को हनुमान की पदवी देना चाहते हैं। हम सेना को अपनी रक्षा का आधार मानते हैं। तुलसीदासजी ने 'हनुमान चालीसा' लिखा। रावण भी तो ताकत-वर था, पर उसने 'रावण-चालीसा' नहीं लिखा! क्योंकि हनुमान की ताकत हमें बचाने वाली ताकत है, रावण की ताकत नहीं। हनुमान की ताकत से ही देश बचेगा, रावण की ताकत से नहीं। जिन सिपाहियों को आपको शराब पिलानी पड़ती है, भोग के साधन देने पड़ते हैं और रणक्षेत्र में भेजने पर जिनके भोग-विलास के लिए कन्याएँ भेजनी पड़ती हैं, उनकी नीति को भी नीति मानना पड़ता है। हमने सुना—'बॉर बेबीज' का यानी, युद्ध में पैदा हुए बच्चों का सवाल। हम ताज्जुब में रह गये कि युद्ध

से बच्चे कैसे पैदा होते हैं? वहाँ पर तो लोग मरते हैं। लेकिन आधुनिक युद्ध में बच्चे पैदा होते हैं। ये फौजें हमारा आधार हैं, ऐसा कहा जाता है! अगर हमारे पवनार-आश्रम की रक्षा करनी है, तो कौन करेगा? ध्यान-योगी सोचता है कि ऊपर से बम पड़ेगा, तो हमारा ध्यान कैसे होगा? क्या पुलिस हमारी रक्षा करेगी? इसी तरह जब तक हमारे देश की रक्षा गुंडों पर निर्भर है, जब तक यह स्थिति है, तब तक गुंडों का ही राज्य चलेगा। उसे आप चाहे जो नाम दें, पर राज्य गुंडों का ही चलेगा। कोई नाम देने से असलियत नहीं मिटेगी। इसलिए हम चाहते हैं कि हमारे मसले शांति के तरीके से हल हों।

कत्ल से, कानून से या हृदय से?

कुछ लोग कहते हैं कि आपका जो भूदान-यज्ञ का कार्य चल रहा है, उसमें देर लगेगी, इसलिए कानून से जल्द काम क्यों नहीं करवा लेते? ये सोचते हैं कि कानून से काम जल्द हो जाता है, कत्ल से और भी जल्द हो जाता है। मैं मानता हूँ कि कत्ल से काम जल्द होता है। मान लीजिए कि हमारे सारे मजदूर उठ खड़े हो जायें और एक तारीख मुकर्रर करें, जैसे कि २६ जनवरी; और उस दिन सब मालिकों को कत्ल कर दें, तो विनोबा जो काम दस साल में करता, वह एक दिन में होगा। मैं मानता हूँ कि यह हो सकता है। लेकिन क्या यह कोई हल है? लोग सोचते हैं कि कानून से क्या नहीं हो सकता? लेकिन क्या कानून से आप दयालु बन सकते हैं, धार्मिक बन सकते हैं? उधर बंबई में कानून बना कि स्कूल के बच्चों को फाउंटैनपेन इस्तेमाल नहीं करनी चाहिए,

क्योंकि उससे अक्षर बिगड़ते हैं। क्या वह काम भी हम बुद्धि से नहीं कर सकते? क्या शिक्षक विद्यार्थियों को इतना भी नहीं समझा सकता? आजकल तो यह बात चली है कि सब कुछ कानून से हो। ये जो सिनेमा चलते हैं, वे कितने गंदे होते हैं! वे हमारे बच्चों को बिगाड़ रहे हैं। लोग कहते हैं कि उनको रोकने के लिए कानून बनाना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि कानून न बने। कानून तो जरूर बनना चाहिए। अभी दिल्ली में माताओं ने सरकार से प्रार्थना की कि इन गंदे सिनेमाओं को रोको, नहीं तो हमारे लड़कें गलत रास्ते पर जायेंगे। हम नहीं मानते कि हुकूमत इसमें कुछ नहीं कर सकती। हुकूमत बहुत-कुछ कर सकती है, बशर्ते कि वह हुकूमत हो, यानी उसमें बुद्धि का भी अंश हो। लेकिन यहाँ पर, जो इतने सारे शिक्षक और पालक बैठे हैं, जिनमें हिंदू, मुसलमान, ईसाई सब हैं, वे देख रहे हैं कि हमारे बच्चे गलत रास्ते पर जा रहे हैं, निर्वीर्य बन रहे हैं, तो क्या ये उन्हें रोक नहीं सकते? क्या वे नैतिक विचार का प्रचार नहीं कर सकते हैं? हमारे देश में प्राचीन काल से नैतिक विचार का कितना प्रचार हुआ। गाँव-गाँव के अशिक्षित लोगों से पूछा जाय कि परमेश्वर कहाँ है, तो वे जवाब देते हैं, वह घट-घटवासी है। यह सब कैसे हुआ? लाखों लोग धर्म के वास्ते तपस्या करके मरे। क्या यह कानून से हुआ है? लाखों लोग कुंभ-मेले में जाते हैं, क्या कानून से जाते हैं? हमारे जीवन की कई बातें कानून से नहीं हो सकतीं। हमारे हृदय के अंदर जो चीज है, उसी से यह सब होता है। क्या वह चीज खतम हो गयी है? क्या लोग सिनेमा देखना बंद करके रात को आसमान में जो सिनेमा चलता है, उसे नहीं

देख सकते ? ऋषि कहता है कि पाप को मिटाना है, तो नक्षत्रों का दर्शन करो। उससे आँखों को ठंडक पहुँचती है और मन में उन्नत विचार आते हैं। क्या हम ऐसा सुंदर सिनेमा नहीं देख सकते ? मैं मानता हूँ कि कानून का भी इस बारे में कुछ कर्तव्य है। इलाहाबाद में हमें मानपत्र दिया गया। उसमें लिखा गया था कि वहाँ की म्यूनिसिपैलटी ने रात के सिनेमा पर रोक लगा दी थी, पर प्रांतीय सरकार ने वह हटा दी। मैं मानता हूँ कि सरकार का इस मामले में बहुत बड़ा कर्तव्य है और अगर सरकार के लोग उस कर्तव्य का पालन नहीं करते हैं, तो दोष के पात्र हैं। लेकिन क्या हमारी भी कोई अपनी शक्ति नहीं है ?

मसले भगवान् की कृपा हैं

भूमि का मसला कानून से हल नहीं हो सकता। कानून से जमीन बँट सकती है, पर कानून दिलों को जोड़ नहीं सकता। यह जो आन्दोलन चल रहा है, वह दिलों को जोड़ने वाला आंदोलन है। यह काम कानून नहीं कर सकता, चाहे कानून जमीन को बाँटने का स्वांग भले ही करे। इसलिए भूदान-यज्ञ की जो कीमत है, वह आप इस पर से न करें कि इसमें कितनी जमीन मिलती है और इस काम को पूरा करने में कितना समय लगता है। ऐसा गणित न कीजिए। हम मानते हैं कि छह महीनों में यह मसला हल हो सकता है, ऐसी हालत बिहार में पैदा हुई है। दान देने के लिए कोई 'ना' नहीं कह सकता, चाहे कोई छोटे हिस्से से कम दे और छोटा हिस्सा देने के लिए हमें बार-बार समझाना पड़े। परंतु दान न देने की बात करने वाला मनुष्य दुर्लभ है। इसलिए अगर

इसी काम पर जोर दिया जाये, तो छह महीनों में यह मसला हल हो सकता है, यह समझ लीजिए। इसकी कीमत तो, उसका जो नैतिक मूल्य है, उस पर से करनी होगी। इतना बड़ा मसला शांति से हल हो जावे, तो दूसरे मसले हल करने की भी शक्ति पैदा होगी। फिर हमारे हाथ में एक ऐसी कुंजी आ जाती है, जिससे पचासों ताले खुल जायेंगे। हमारे देश में परमेश्वर की कृपा से काफी मसले हैं। मैंने 'परमेश्वर की कृपा' शब्द जानबूझ कर कहा है, क्योंकि ईश्वर की अवकृपा होगी, तो देश में मसले ही नहीं रहेंगे। ईश्वर की कृपा है, इसलिए मसले हैं और मनुष्य की बुद्धि से उन्हें हल करना है। हम तो ऐसे जमाने में जीना ही नहीं चाहेंगे, जब मसले ही नहीं रहेंगे। हम तो प्रभु से कहेंगे कि हे प्रभु! ऐसे ही जमाने में हमें जन्म देना, जहाँ मसलों का सामना करना हो, कुछ पुरुषार्थ करना हो। इसलिए मसलों का हल होना जरूरी है। परंतु उन्हें कैसे हल किया जायेगा, इसका कारगर तरीका ढूँढ़ना चाहिए। अब एक ऐसा तरीका हाथ आ गया है।

युग को विचार की भूख है

जब जमीन गर्मी से तपती है, तब वह ऊपर की बारिश की राह देखती रहती है। जब बारिश आती है, तब मिट्टी उसे पी लेती है। उसी तरह आज हिंदुस्तान को इस विचार की भूख है। इतने सारे लोग शांति से विचार सुनते हैं, इसका क्या कारण है? यही कि हिंदुस्तान को आज इस विचार की अत्यन्त भूख है, नहीं तो विनोबा की बात कौन सुनता? विनोबा के पास

कौनसी सत्ता है ? विनोबा के पास कोई सत्ता नहीं है । विनोबा सत्ता चाहता भी नहीं और विनोबा का सत्ता पर विश्वास भी नहीं है । इसलिए १९५७ में आप विनोबा को वोट मांगते हुए नहीं देखेंगे । पिछले चुनाव के दिनों में हम उत्तर-प्रदेश में घूमते थे, तो हमसे कई लोगों ने कहा कि अभी चुनाव के दिन हैं, इसलिए थोड़े दिनों के लिए अपनी यात्रा बंद रखिये, क्योंकि आपका भाषण सुनने ज्यादा लोग नहीं आयेंगे । हमने कहा कि जितने कम लोग आयेंगे, उतना ही हमें ज्यादा उत्साह मालूम होगा । हमने तो छह-सात बच्चों को ही दस-दस साल तक पढ़ाया है । हमारा संख्या पर विश्वास नहीं है । लेकिन हमने उत्तर-प्रदेश में देखा कि भूदान की मीटिंग में लोग जितनी तादाद में आते थे, उतनी तादाद में चुनाव की मीटिंग में भी नहीं जाते थे । जो चुनाव लड़ रहे थे, उन्होंने ही हमें यह बात सुनायी । चुनाव की मीटिंग में तो तालियाँ बजती थीं, शोरगुल होता था, लेकिन हमारी मीटिंग में लोग चित्रवत् बैठे रहते थे । परितृप्त होकर सुनते थे । दान भी देते थे । मैंने यह भी कहा कि क्या गंगा रुकती है ? हम भी क्यों रुकें ? जब लोग मुझे सुनाते थे कि चुनाव में फलाना जीता और फलाना हारा, तो हम अखबार में उसे पढ़ते भी नहीं थे । अगर किसी ने सुनाया कि फलाना मिनिस्टर क्या बोला, आपको मालूम है ? तो मैं पूछता कि मैं क्या बोला, उसको मालूम है ? अगर मैं क्या बोला, यह उसे मालूम नहीं है, तो वह क्या बोला, यह जानने की जिम्मेवारी मुझ पर नहीं है ।

सौ फीसदी दान-पत्र चाहिए

हम गणित के प्रेमी हैं, इसलिए गणित करते हैं। अबतक साढ़े तीन लाख लोगों ने दान दिया। अगर एक मनुष्य दान देता है, तो कम-से-कम दस मनुष्य हमारा विचार सुनते हैं। जितने काश्तकार हैं, उतने दानपत्र हमको मिलने चाहिए। हमें तो सौ फीसदी दानपत्र चाहिए। अगर देश में छह करोड़ मनुष्य संपत्ति रखने वाले हैं, चाहे चार कौड़ी रखें, चाहे चार करोड़ रखें, तो हमें छह करोड़ संपत्ति-दानपत्र चाहिए। लोग हमसे पूछते हैं कि क्या किसी आंदोलन में इस तरह सौ फीसदी काम हो सकता है? अभी वैद्यनाथ बाबू ने कहा कि सौ फीसदी दानपत्र कैसे हासिल कर सकते हैं, कुछ 'परसेंटेज' (प्रतिशत) लगाइये। तो हमने उनसे कहा कि हाँ, आप यह कर सकते हैं, पर हमारी माँग तो १००% दानपत्रों की रहेगी। अभी यहाँ पर जो सारे लोग बैठे हैं, वे सब-के-सब मरने वाले हैं। मरने में शत-प्रतिशत की बात है, तो फिर जीवन में कम फीसदी क्यों? यह आंदोलन तो जीवन-निर्माण का आंदोलन है। सारे लोग मरने वाले हैं। उस चुनाव में सारे वोट देने वाले हैं। यमराज की पेट्टी में सब के वोट गिरने वाले हैं। जब मृत्यु के लिए इतना वोटिंग होता है, तो जीवन के लिए कम क्यों होना चाहिए? जो विचार हमें घुमा रहा है, हमारे पाँवों को प्रेरणा दे रहा है, वह विचार अगर आपको जँच जाये, तो आपसे भी रहा न जायगा। विचार पर हमारी इतनी श्रद्धा है कि हम मानते हैं कि दुनिया में विचार से बढ़कर कोई ताकत नहीं है।

आत्म-शक्ति का महत्त्व

एक दफा एक भाई ने हमसे कहा कि 'जरा आपकी कुंडली देखना चाहता हूँ। मंगल और शनि का आप पर क्या असर पड़ता है, यह देखना चाहता हूँ।' तो मैंने कहा कि 'मैं जरा मंगल की कुंडली देखना चाहता हूँ कि उस पर मेरा क्या असर पड़ता है, क्योंकि वह तो आखिर जड़ है और हम चेतन हैं।' हम ब्रह्म हैं। हमसे बढ़कर दुनिया में कोई ताकत नहीं है। हम द्रष्टा हैं और सारी सृष्टि दृश्य है। हम इसे रूप देने वाले हैं। जैसे कुम्हार मिट्टी को रूप दे सकता है, उसी तरह हम इस सृष्टि को चाहे जो रूप दे सकते हैं। अगर यह विचार आपको जँच जावेगा तो आपमें ऐसी ताकत पैदा होगी, जो एटम बम में भी नहीं है। जब मुझे लोगों ने सुनाया कि एटम बम कितना बड़ा है, शक्तिशाली है, तो हमने कहा कि हमारे पास 'आत्म-बम' है, आत्मा की शक्ति। आखिर एटम बम मनुष्य ने ही बनाया। जो उसे बना सकते हैं, वे उसे खतम भी कर सकते हैं। हम आपको बताना चाहते हैं कि आप कमजोर नहीं हैं। आप अत्यन्त बलवान हैं। आपसे बढ़कर बलवान दुनिया में कोई नहीं है। परंतु वह शक्ति शस्त्रों में नहीं है, आत्मा में है, प्रेम में है। उस शक्ति को प्रकट करने के लिए ही यह आन्दोलन चल रहा है।

सर्वोदय का यही नियम है कि पहले हमारे भाई को मिले और बाद में हमें मिले। लेकिन जब लोग कहते हैं कि पहले मुझे मिले, तो वह सर्वनाश का तरीका है। इसलिए हम चाहते हैं कि सब लोग कहें कि पहले दूसरों को मिले। हम ऐसी सहज

व्यवस्था चाहते हैं। राक्षसी व्यवस्था हम नहीं चाहते। आप 'गीता-प्रवचन' का पठन करेंगे, तो आपको आत्मा की शक्ति का भान होगा।

गांधीजी का जन्म गुजरात में क्यों हुआ ?

अभी स्वामी आनंद ने कहा कि यहाँ पर गुजराती समाज ज्यादा है, उसके लिए कुछ कहिये। हमने कहा कि हाँ, होना ही चाहिए। जहाँ गुड़ होता है, वहाँ चींटी होनी ही चाहिए। लेकिन गुजराती भाइयों पर बड़ी भारी जिम्मेवारी है। गाँधीजी गुजरात में पैदा हुए। यह कोई नसीब की बात नहीं है। उसके पीछे एक तत्त्व है। गुजरात ही एक ऐसा प्रदेश है, जहाँ का किसान मांसाहार छोड़ बैठा है। सारी दुनिया में दूसरी जगह आम जनता में यह बात नहीं पायी जाती। यह जो अहिंसा है, उसके परिणामस्वरूप वहाँ पर गाँधीजी पैदा हुए, जो कि दुनिया के लिए बहुत बड़ा प्रकाश है। हजारों साल के बाद भी हिंदुस्तान और सारी दुनिया इस बात को महसूस करेगी और जैसे आज भी हम बुद्ध-जयंती मनाते हैं और मानते हैं कि उनसे कितना बड़ा प्रकाश मिल रहा है, उसी तरह गांधीजी के बारे में भी सीखा जायेगा। इसलिए हम गुजरातियों से आशा करते हैं कि गांधीजी के विचारों का दर्शन उनके जीवन के द्वारा प्रकट हो। वैसे, हम खास किसीके लिए कभी कुछ कहते नहीं। जैसे मेघ बरसता है, वैसे ही हम भी बरसते जाते हैं। पर आज स्वामी आनंद ने कहा, इसलिए गुजरातियों के लिए खास बातें कह दीं।

भरिया, (मानभूमि)

२७.१२.'५४

भूदान-आरोहण

: १ :

यज्ञ के अध्वर्यु

बिनोबा ने एक दिन एक सुशिक्षित आदमी से कहा—
“कृपा कर मुझे स्टेशन तक जाने के लिए रास्ते का एक नक्शा
खींच दीजिए !” उन सज्जन ने राह चलते उत्तर दिया—“मैं
नक्शा नहीं खींच सकूंगा, क्योंकि मैं भूगोल का प्रोफेसर नहीं
हूँ, मैं तो विज्ञान का प्रोफेसर हूँ।”

आज ज्ञान के इस कदर टुकड़े हो गये हैं कि विज्ञान सिखाने
वाले आदमी को अपने घर से स्टेशन तक का नक्शा खींचने
लायक भी भौगोलिक ज्ञान नहीं है। यह हुई ज्ञान के टुकड़े-
फरोशी की बात। लेकिन आज तो मनुष्य के ही टुकड़े हो गये हैं।
आदमी के दिल, दिमाग और हाथों का आज एक-दूसरे से सम्बन्ध
नहीं रहा। जो हाथ का काम करता है, वह दिमाग का काम नहीं
करता। जो दिमाग का काम करता है, वह हाथ का काम नहीं
करता। हाथ या दिमाग का काम करने वाले का हृदय मानो
उसके साथ ही नहीं रहता।

बिनोबा जिस साम्ययोगी समाज के बारे में कहते हैं, उसमें
दिल, दिमाग और हाथ का सम्बन्ध साबित रहेगा। उसमें ज्ञान,

कर्म और भक्ति का समन्वय होगा। उसमें आदमी के जीवन के टुकड़े नहीं होंगे।

विनोबा का जीवन ज्ञान, कर्म और भक्ति का त्रिवेणी-संगम है। इन तीनों के साम्य में से ही साम्ययोगी विनोबा ने हमें भूदान-यज्ञ का विचार दिया है। इसलिए इस यज्ञ की बुनियाद समझने के लिए हमें विनोबा के जीवन के आधारभूत मुख्य विचार और उनका आचरण, जो दुनिया के सामने है, उसे समझना जरूरी है।

विनोबा ने ज्ञानयोग की जो साधना की है, वह सिर्फ बुद्धि की दृष्टि से नहीं, धर्म को जीवन में बुद्धिपूर्वक उतारने की दृष्टि से की है। उन्होंने उतनी ही ज्ञान-साधना की है, जितनी धर्म को जीवन में लाने के लिए जरूरी है। मसलन, विनोबा इक्कीस भाषाएँ जानते हैं। लेकिन “मैं इतनी भाषाएँ सीखा हूँ”—ऐसी मुहर लगवाने के लिए उन्होंने ये सारी भाषाएँ नहीं सीखी हैं। दुनिया के सभी धर्मों के मूलग्रन्थ को पढ़ने के लिए उन्होंने संस्कृत, पालि, अर्धमागधी, अरबी, फारसी, लेटिन वगैरह भाषाएँ सीखी हैं। भारत के सब सन्तों की वाणी का प्रसाद उनकी मूल भाषा में ही चखने के लिए सारी भारतीय भाषाएँ सीखीं। दक्षिण की तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ लिपियाँ वे वर्णमाला के तख्ते देखकर नहीं सीखे। उन लिपियों में प्रकाशित गीता की प्रतियाँ सामने रखकर विनोबा ने अभ्यास किया। “धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे” किस प्रकार लिखा गया होगा? उस श्लोक के एक-एक वर्ण को पहचान कर लिपियों का ज्ञान प्राप्त किया।

विज्ञान और इतिहास विनोबा के प्रिय विषय हैं। वे मानते हैं कि ज्ञान के दो पंख हैं : एक आत्मज्ञान और दूसरा विज्ञान। इन दोनों के बिना ज्ञान सम्पूर्ण ही नहीं होता। “गीता के बाद गणित मुझे सबसे अधिक प्रिय है”, ऐसा वे बार-बार कहते हैं। विनोबा को बचपन में जब सिरदर्द होता था, तब गणित में एकाग्रता सध जाने के कारण उनका यह गणित सिरदर्द की औषध बन जाता था। बड़ी उम्र में वही गणित आध्यात्मिक विचार समझाने का साधन बना। वे कहते हैं “काम कम होगा, फिर भी उसका अभिमान यदि नहीं होगा, तो कम काम भी ज्यादा हो जायगा। लेकिन यदि काम अधिक किया हो और थोड़ा भी अभिमान मन में आया, तो उसका मूल्य घट जायगा। चार सेर सेवा की हो और अभिमान चालीस हो, तो सेवा का मूल्य आठ तोले हो जायगा। लेकिन शून्य अभिमान से की गयी एक तोला सेवा भी भाग में शून्य होने के कारण अनंत तोले होगी, यानी सेवा की शक्ति अनन्त हो जायगी।” विनोबा की गणित-प्रियता आज इस यज्ञ में पूरी सहायक हुई है। देश के भूमिहीनों के लिए कितनी भूमि चाहिए, उतनी भूमि के लिए कितने दानपत्र चाहिए और इन दान-पत्रों के लाने के लिए कितने कार्यकर्ता चाहिए—यह सारा मंथन बराबर चलता रहता है। इस प्रकार विनोबा के ज्ञान-योग का वर्णन बहुत हो सकता है।

उन्हें संगीत और चित्रकला का भी शौक और परख है। यह सारा ज्ञान हासिल करने में विनोबा को एकाग्रता से बड़ी मदद मिली है। एकाग्रता के कारण वे घंटों तक अटूट कातते हैं। जब पढ़ते हैं तब बहुत देर तक उन्हें पता भी नहीं चलता

कि पास में कोई खड़ा है। एकाग्रता के समान ही उनकी मदद अविद्या* ने भी की है। वे मानते हैं कि ज्ञान के लिए जिस प्रकार स्मरणशक्ति की जरूरत है, उसी प्रकार उन चीजों को भूलने की कला की भी जरूरत है जो साधना के लिए निरूपयोगी हैं। उनका संग्रह क्यों? इस कला पर भी उन्होंने अधिकार पाया है।

यह सब कहने का मतलब यह नहीं कि विनोबा निरे ज्ञानयोगी ही हैं। वे सतत कर्मयोगी भी हैं। उनके कर्मयोग का एक मूलसूत्र है—‘तुम जिसकी सेवा करते हो, उसके जैसे बनो। माँ यदि बच्चे को उठाना चाहती है तो सीधी खड़ी रह कर नहीं उठा सकती। सेवक यदि जनता को ऊँचा उठाना चाहता है, तो जनता से—दरिद्रनारायण से—समरस हुए बगैर वैसा नहीं कर सकेगा’। इसी सूत्र में से विनोबा का ज्ञानयोग खड़ा हुआ है और इसी आधार पर जीवन के बत्तीस साल की ग्राम-सेवा खड़ी है। इसके माध्यम से ही स्वावलम्बन, ऋषिखेती और कांचन-मुक्ति के प्रयोग हुए हैं। उन्होंने सोचा—‘मेरे इर्दगिर्द सबसे गरीब कौन है?’ चरखा चला कर उदरभरण करने वाली कुछ मुसलमान विधवाओं पर उनकी नजर गयी। उन्होंने तय किया, तकली चलाकर गुजारा क्यों न किया जाय? सम्पूर्ण एकाग्रता से, आसन पर से जरा भी खिसके बिना, वे सुबह से शाम तक तकली चलाने लगे। तकली में छिपी सारी शक्तियों का उन्होंने आविष्कार किया। लेकिन उसके फलस्वरूप दिनभर

*अविद्या—‘ईशावास्य वृत्ति’ पुस्तक में विनोबा ने ‘अविद्या’ शब्द का अर्थ किया है : अनावश्यक ज्ञान का अज्ञान।

में उन्हें पाँच से सात पैसे रोजी मिलती थी। उन्होंने तय किया था कि यदि पाँच पैसे कमाऊँगा तो सवा पाँच पैसे खर्च नहीं करूँगा। रोटी और नमक ही खाया। सूखी रोटी और साग खाया, जिससे शरीर तो क्षीण हुआ; लेकिन प्रयोग नहीं क्षीण होने दिया।

तकली पर कातने में परिश्रम पूरा नहीं हो पाता था। तो फिर सबसे अधिक मेहनत करनेवालों के साथ तादात्म्य कैसे साधें, यह चिन्तन शुरू हुआ। जेल में उन्हें उसका मौका मिल गया। पत्थर फोड़ने का काम उन्होंने हाथ में छाले पड़ने और खून निकलने तक किया। एक घंटा नहीं, दो घंटे नहीं, कई घंटों तक और लगातार कई महीनों तक किया। उसी प्रकार सबसे नीच माने जानेवाले भंगियों के साथ वे स्वयं भंगी बने। वर्षों तक उन्होंने अकेले अपने हाथों पवनार-आश्रम के पड़ोस के गाँव, सुरगाँव, की सफाई की। काम को ही उन्होंने पूजा माना।

हाथ और मस्तिष्क के ऐसे अपूर्व संयोग के साथ हृदय भी भक्ति के रूप में उमड़कर आ मिला। भक्ति से मतलब तिलक, माला, आरती, धूप, दीप नहीं। भक्ति माने भूतमात्र के लिए सम्यक्दृष्टि। हरएक में अपना रूप देखना, सबमें अपना राम निहारना। फूल की गंध में तो ईश्वर हर किसी को दीख सकता है लेकिन जिसे काँटे के नुकीलेपन में भी ईश्वर दीखे वही सच्चा भक्त है। सज्जन की सज्जनता में तो ईश्वर सबको दीख सकता है, लेकिन दुर्जन की दुर्जनता में भी जिसे ईश्वर की इच्छा पूरी होती हुई दिखाई दे, उसकी ही सही भक्ति है।

—विनोबा की उत्तरप्रदेश यात्रा चालू थी। एक दिन

पास में कोई नहीं था। सब भोजन के लिए गये थे। उस समय एक नौजवान विनोबा के पास आया। तयोरियाँ चढ़ाकर बोला—
 “विनोबा ! हिन्दुस्तान के टुकड़े होने देने के कारण गांधीजी का जो हाल हुआ, वही हाल आपका भी होनेवाला है। क्योंकि आप भी भूमि के टुकड़े करवा रहे हैं। आज तो मैं आपके पास पहली और आखिरी सूचना देने के लिए आया हूँ। लेकिन अब आपकी जान खतरों में है।”

विनोबा ने उस आदमी में भी अपने राम देखे और मन ही मन उसे प्रणाम किया। मौत की धमकी देने वाले आदमी में भी जिसे अपने राम के दर्शन हों, वह भक्तियोगी कैसा होगा ? इस प्रकार विनोबा के जीवन में ज्ञान, कर्म और भक्ति का त्रिवेणी-संगम हुआ है। यहाँ जीवन-चरित्र की बातें नहीं कहनी हैं ; क्योंकि चरित्र से चारित्र्य महान् है।

आन्दोलन का क्रमिक विकास

भूमिदान-यज्ञ साम्ययोगी विनोबा की जीवन-तपस्या का फल है। उसके पीछे ज्ञान, कर्म और भक्ति की संस्कृति है, जमाने की माँग है। उसमें दुनिया ने मानव तथा मानव-समाज को साथ-साथ बदलने का प्रेममय मार्ग पाया है। आज जब कि बच्चा-बच्चा 'भूदान-यज्ञ सफल करेंगे' के उद्घोष से आसमान गुंजायमान कर देता है, जब कि भूदान-यज्ञ का अभिनव प्रकरण अपनी आँखों से देखने के लिए दुनिया के हर कोने से बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुषों का एक अखण्ड ताँता-सा लगा रहता है, तब भूदान-यज्ञ के विभिन्न पहलुओं का सम्यक् दर्शन कर लेना अत्यन्त आवश्यक है।

—स्वराज्य का उषःकाल भारतवर्ष के लिए अत्यन्त गंभीर पर्व था। हमारी लोकधानी दिल्ली में जब स्वतंत्रता समारोह की रोशनियाँ जल रही थीं, तब जिनकी तपस्या के कारण हमें आजादी हासिल हुई थी, वे राष्ट्रपिता नोआखाली में कौमी-भगड़ों की आग बुझाने के लिए अकेले पहुँच गये थे। देश के टुकड़े हुए थे, लाखों भारतवासी अपने परिवारों को साथ ले अत्यन्त दुःख के साथ स्थानान्तरित हो रहे थे। मतवाली धर्मान्धता ने नग्न नृत्य शुरू किया था। भाई-भाई एक-दूसरे का विनाश

करने में लगे थे। माँ-बहनों की लाज लूटी जा रही थी और इसी पागलपन की लहर ने हमारे राष्ट्रपिता को भी हमसे छीन लिया। मानवता का चिराग़ मानो बुझ गया। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा छा गया। बापू का समग्र जीवन एक प्रकार से अत्यन्त करुणान्त नाटक-सा दीख पड़ता है। उनकी प्रायः एकाकी तपस्या से हमें स्वराज्य तो मिला, लेकिन उसमें बापू की कल्पना का स्वराज्य नहीं दिखा। उस पर खून के दाग थे, अविश्वास की कालिख थी, और असमानता का कलंक था।

बापू के साथियों की हालत भी उस समय कुछ अजीब-सी थी। उनके कुछ अत्यन्त निकट के साथी सत्ता की बागडोर सँभालने की ओर मुड़े। लेकिन उनकी पूरी शक्ति देश के सामने खड़ी बड़ी-बड़ी समस्याओं को किसी कदर थोपकर रखने में ही खतम होने लगी। गांधीजी की तरह समस्याओं को सुलझाने के लिए उनके पास कोई नया अहिंसक मार्ग नहीं था। इसलिए उन्होंने उन्हीं पुराने तरीकों—लाठी, जेल, गोली का इस्तेमाल चालू किया, जिनका प्रयोग अंगरेज सरकार उनके खिलाफ करती आयी थी।

गांधीजी के अन्य कुछ अनुयायी अपने सरकारी साथियों की नुक्ताचीनी करने लगे थे और इसीके स्वप्न देखते रहते थे कि सरकार में हम होते तो क्या करते? लेकिन उनके पास भी जनता के लिए विधायक पुरुषार्थ की प्रेरणा देनेवाला कोई कार्यक्रम नहीं था। गांधीजी के वे अनुयायी जो अपने आपको रचनात्मक कार्यकर्ता कहलाते थे, अपनी-अपनी संस्था खोले बैठे थे, उनमें से कुछ को अपने मौजूदा काम से असन्तोष

था, लेकिन उन्हें आगे का मार्ग सूझ नहीं रहा था। कुछ रचनात्मक कार्यकर्ताओं को अपने काम से सन्तोष भी था, किन्तु उससे देश की ताकत बढ़ती हुई नजर नहीं आती थी।

देश जब इस असमंजस की हालत में था, तब विनोबा अपने परधाम के आश्रम में कांचनमुक्ति और ऋषिखेतो के प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने इतना तो देख लिया था कि देश की सारी समस्याओं के मूल में असमानता है। असमानता की जड़ों को काटने के लिए अपनी छोटी-सी प्रयोगशाला में प्रयोग करना काफी नहीं था। उसे सामूहिक रूप से देशव्यापी प्रयोगशाला में चलाना जरूरी था। इतिहास की दृष्टि से देश के सामने मूल सवाल यह था कि गांधीजी के अहिंसा के जिस मंत्र ने देश को नवजीवन दिया, चेतना दी और स्वातंत्र्य-प्राप्ति में बहुत बड़ा हिस्सा लिया, वह अहिंसा का मंत्र क्या गांधीजी के शरीर के साथ ही लुप्त हो गया? जिस अहिंसा को बुद्ध, महावीर, ईसामसीह आदि सन्त-महात्माओं ने अपनी तपस्या से व्यक्तिगत जीवन में सफल किया, राजनीति के क्षेत्र में जिसका प्रवेश गांधीजी ने कराया, वह अहिंसा क्या इतनी दूर आकर रुक जायगी? समग्र मानव-जीवन को स्पर्श करनेवाले इस मूलभूत प्रश्न के उत्तर की खोज में विनोबा लगे हुए थे। भूदान-यज्ञ में उन्हें इस प्रश्न का उत्तर मिल गया। इसीलिए विनोबा ने तेलंगाना के उस प्रसंग को, जहाँ से भूदान-यज्ञ का आरंभ हुआ, “अहिंसा का साक्षात्कार” कहा।

पोचमपल्ली ! हैदराबाद के तेलंगाना विभाग के इस छोटे-से गाँव को १८-४-१९५१ से पहले बाहर का कोई आदमी जानता

भी नहीं था। उस प्रदेश में चारों ओर आतंक छाया था, दिन में सरकारी अफसरों का, रात को साम्यवादियों का। विनोबा शिवरामपल्ली के सर्वोदय-सम्मेलन के बाद पैदल वर्धा लौटते हुए तेलंगाना पहुँचे। जहाँ पुलिस भी भरी बन्दूक के साथ जाती थी, वहाँ रामनाम के सिवा उनके पास कोई रक्षण नहीं था। घर-घर जाकर जनता को कायरता छोड़कर प्रेमभाव बढ़ाने की उन्होंने सीख दी।

—दोपहर को हरिजनों की एक सभा थी। विनोबा जिस गाँव में पहुँचते वहाँ ऐसी सभाएँ हुआ करतीं। उन्होंने गाँव के उन गरीबों से उनका सुख-दुःख पूछा और उनकी माँग पूछी। वे जमीन के भूखे थे। उन गरीबों ने ८० एकड़ जमीन की माँग रखते हुए कहा—हमें इतनी जमीन मिल जाय तो हमारी आवश्यकता पूरी हो सकती है। विनोबा ने कहा—“ठीक है, हम आपको जमीन दिलाने की कोशिश करेंगे।” यह कोशिश सरकार के पास जाकर ही करने की कल्पना पहले उनके मन में आई। लेकिन उन्होंने सोचा, यहाँ गाँववालों से भी पूछ लें; और उसी सभा में पूछा कि क्या इस गाँव में से कोई इन गरीबों को जमीन देगा? विनोबा का पूछना ही था कि एक भाई, रामचन्द्र रेड्डी, उठ खड़े हुए और उन्होंने कहा—“मेरे पिताजी ने कुछ जमीन दान करने के लिए अलग निकाली है। वह मैं देना चाहता हूँ।” उनके मुँह से ईश्वर बोल उठा। विनोबा ने यह चीज पकड़ ली। भगवान् को संकेत करना था, यह अपने मन में अनुभव किया। अगर वह संकेत विनोबा नहीं पकड़ते तो अहिंसक क्रान्ति के सामूहिक आविष्कार का यह

नया अध्याय शायद ही लिखा जाता। यही भूदान-यज्ञ की गंगोत्तरी है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद कुछ निर्वासितों को सरकार से जमीन दिलाने में कितनी कठिनाई हुई है, इसका अनुभव खुद उन्हें था। इसलिए उन्होंने पोचमपल्ली में जनता से ही जमीन की माँग की।

घटना यों तो छोटी-सी थी। लेकिन विनोबा ने उसमें ईश्वर का संकेत देखा। आज तक देवालयों, विद्यालयों या अन्य सार्वजनिक उपयोग के लिए जमीनें माँगी गयी थीं। लेकिन दरिद्रनारायण के लिए जमीन माँगने का, देश की भूमि-समस्या दान माँगकर सुलभाने का, यह दुस्साहस विचित्र ही था। लेकिन भगवान् का संकेत मिल चुका था। विनोबा अगर माँगने से भिन्नकते, तो अपने आपको कायर समझते। उन्होंने माँगा और जमीनें मिलीं। मानो चमत्कार ही हुआ। वर्षों से लड़नेवाले भाई एक-दूसरे से गले मिले। धरती के लालों ने सदियों के बाद अपनी माँ वसुन्धरा को माँ कहने का अधिकार प्राप्त किया। पोचमपल्ली से सेवाग्राम पहुँचने तक, दो महीनों में, विनोबा को बारह हजार एकड़ भूमि दान में मिल चुकी थी।

लोगों ने कहा कि तेलंगाना में जमीन मिल सकती थी; क्योंकि वहाँ लोग हिंसक लोगों के आतंक से डर गये थे। जमीन अपने हाथ में रहेगी या नहीं, यह वे जानते ही नहीं थे; इसलिए उन्होंने विनोबा को जमीन दे दी। जलता घर कृष्णार्पण किया।

विनोबा ने इस आक्षेप का मौखिक उत्तर नहीं दिया। उनकी उत्तर-भारत यात्रा ने ही इसका उत्तर दे दिया। पंचवार्षिक

योजना के बारे में परामर्श के लिए पण्डित नेहरू ने विनोबा को दिल्ली बुलाया। १२ सितम्बर '५१ को पुनः पद-यात्रा में पवनार से निकल पड़े। जहाँ लोगों में साम्यवाद के आतंक का प्रश्न नहीं था, जहाँ असमानता थी, लेकिन हिंसा का नाम नहीं था, उन मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और दिल्ली के देहातों से विनोबा को दो महीनों में करीब अठारह हजार एकड़ जमीन मिली। देश ने यह सिद्ध कर दिया कि उन्हें "सर्वोदय से पहले सर्वनाश" का रास्ता नहीं चाहिए। बुद्ध, महावीर और गांधी ने जो अहिंसा का दीप भारतीय जनता के हृदय में जलाया था वह अभी बुझा नहीं था। उसे जरूरत थी अन्तस्तल में पैठकर हृदयशायी भगवान् को जगानेवाले भक्त की। विनोबा की पावन वाणी ने भारतीय आत्मा को जगा दिया।

२ अक्टूबर, '५१ के दिन विनोबा मध्यप्रदेश के सागर शहर-में पहुँचे। वहाँ मध्यप्रदेश के कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन हुआ। भूदान-यज्ञ के इतिहास में इस सम्मेलन का एक खास स्थान है। इसी सम्मेलन में विनोबा ने देश के सामने पाँच करोड़ एकड़ भूमि-प्राप्ति का अपना विचार प्रकट किया। लोग हक्के-बक्के-से रह गये। जिन्होंने यह आँकड़ा अखबारों में पढ़ा उनमें से कुछ ने तो यह समझा कि गलती से दो शून्य अधिक छप गये हैं। विनोबा को अभी तक पूरी पाँच हजार एकड़ जमीन भी नहीं मिल सकी थी। लेकिन उनकी माँग पाँच करोड़ एकड़ तक पहुँच गयी। गणिती विनोबा ने तो अपना गणित तेलंगाना में ही कर रखा था। देश के सात-आठ कोटि भूमिहीनों को काम देने के लिए कम से कम पाँच कोटि एकड़ भूमि तो चाहिए ही। भूदान-

यज्ञ कुछ लोगों के लिए भीख माँगने का काम नहीं है; बल्कि वह तो देश के सम्पूर्ण भूमिहीनों के लिए गुजारे के लिए काफी जमीन प्राप्त करने का क्रान्तिकारी आन्दोलन है, यह साबित करना था। इसलिए पाँच कोटि एकड़ से कम की माँग ही नहीं सकती थी। कोई कह सकता है कि अभी विनोबा को तो जमीन बहुत थोड़ी मिली थी, इतनी अधिक जमीन माँगने का साहस क्यों किया? बात यह है कि जिसने शुरू में ही ईश्वर का सहारा समझकर माँगा था, उसके लिए हिचकिचाहट का प्रश्न ही कहाँ उठता है? विनोबा तो कहते थे कि जो ईश्वर बालक को भूख देता है, वह माँ को दूध भी देता है; जिसने मुझे माँगने की प्रेरणा दी, वही लोगों को देने की प्रेरणा भी देगा। रविबाबू के साथ मानो उन्होंने यह गीत गा लिया था—

“तोमार पत्ताका जारे दाओ
तारे बहि बारे दाओ शक्ति”

जिसे तुम अपनी पताका देते हो, उसे उसके उठाने की ताकत भी दो।

पोचमपल्ली से सागर तक भूदान-आन्दोलन का पहला कदम कहा जा सकता है। इसे हम सिद्धान्त-निरूपण का काल कह सकते हैं। यों तो विनोबा के चिन्तनशील और नित्य-विकासशील स्वभाव के कारण उनके व्याख्यानों में नित्य नया विचार मिल जाता है। फिर भी पोचमपल्ली से सागर तक के व्याख्यानों में भूदान-यज्ञ का विचार-निरूपण संक्षेप में, किन्तु प्रायः समग्र दृष्टि से, विनोबा ने किया है। भूदान-यज्ञ के शेष इतिहास को हम नीचे लिखे कालखण्डों में बाँट सकते हैं—

१. सागर से सेवापुरी तक—जनहृदय प्रवेश काल
२. सेवापुरी से बिहार तक—जन-आन्दोलन काल
३. बिहार यात्रा—एकाग्र प्रयोग काल
४. बिहार के बाद—भूमि-क्रान्ति के पथ पर

सन् '५२ के अप्रैल १३ से १६ तक काशी के पास सेवापुरी में सर्वोदय-सम्मेलन हुआ। सागर से सेवापुरी तक की विनोबा की यात्रा को हमने-जनहृदय प्रवेश काल-कहा है। इन छह महीनों में भूदान देते समय देनेवालों के तथा उसका स्मरण करने-वालों के जीवन को पावन करनेवाले जितने पवित्र प्रसंग हुए उतने शायद और किसी काल में नहीं हुए। छोटे-छोटे लोगों का हृदय उड़ेलकर दान देना, अपनी सारी-की-सारी सम्पत्ति न्यौछावर कर देना, हृदय-परिवर्तन के अपूर्व नमूने पेश करते हैं। इन पावन प्रसंगों में से एक-एक का महत्त्व पुराणों के किसी प्रसंग से कम नहीं है। गोबरी से अन्न निकालनेवाला मंगरू हरिजन, जिसने अपनी पूरी-की-पूरी २१ डेसिमल जमीन दे दी, नैनीताल की वह वुढ़िया, जो अपनी थोड़ी-सी जमीन देने के लिए रात भर जाड़े में बैठी रही, वह बूढ़ा रामचरण जो आँखों से नहीं देखता था, लेकिन जिसे ज्ञानचक्षु थे, किसी से बैलगाड़ी चलवाकर आया और रात को अपनी जमीन दे गया। यह एक-एक प्रसंग हमें विदुर के शाक, शबरी के बेर और सुदामा के तण्डुलों का स्मरण करा देता है। उन दिनों विनोबा गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचते थे। इस समय उनके पीछे आज जैसी अपार भीड़ नहीं रहती थी। इसलिए वे लोगों के हृदय तक पहुँच कर व्यक्तिगत रूप से उनके हृदय में स्थित राम को जगा सकते थे।

जन-हृदय के साथ कवि-हृदय भी जाग उठा। भाँसी में हिन्दी के प्रमुख कवियों ने भूदान-यज्ञ में अपनी लेखनी द्वारा सहायता करने का वचन दिया। इस काल की दो प्रमुख घटनाओं की ओर संकेत करना जरूरी है। पहली विनोबा का देहली निवास और दूसरी घटना मथुरा का कार्यकर्ता सम्मेलन। दिल्ली में आयोजन-पंच के साथ विनोबा ने कई घंटों तक मंत्रणा की तथा अपने विचार साफ-साफ शब्दों में उनके सामने रखे। उस समय बे-रोजगारी के सवाल पर विनोबा ने जो सुझाव दिये थे, उन्हें केन्द्रीय सरकार ने आगामी पंचवर्षीय योजना में मद्दे-नजर रख-कर काम करने का सोचा है, ऐसा कहा जाता है।

मथुरा-सम्मेलन में उत्तर प्रदेश के कार्यकर्ताओं ने अपने प्रान्त में एक करोड़ एकड़ भूमि-प्राप्ति के अन्तिम लक्ष्य की पहली किस्त के तौर पर आगामी एक वर्ष में पाँच लाख एकड़ भूमि प्राप्त करना तय किया। एक निश्चित अवधि और निश्चित परिमाण में जमीन प्राप्त करने के संकल्प का यह प्रथम प्रसंग था।

सेवापुरी-सम्मेलन भूदान-यज्ञ की दृष्टि से बड़े महत्त्व का था। गांधीजी के निर्वाण के बाद सर्वोदय समाज की स्थापना की गयी थी। प्रति वर्ष एक बार सर्वोदय सेवक एकत्र होकर अपने काम के विषय में सह-विचार करते थे। इस प्रकार का यह तीसरा सम्मेलन था। लेकिन दूसरे सम्मेलनों से इस सम्मेलन में यह अन्तर था कि इस बार सह-विचार के साथ सह-कार्यक्रम भी निश्चित किया गया। सेवापुरी में सर्वोदय सम्मेलन के मंत्री श्री शंकरराव देव ने एक महत्त्वपूर्ण संकल्प प्रस्तुत किया, जिसमें देश के पाँच लाख गाँवों में से हर गाँव में एक भूमिहीन परिवार बसाने के

हिसाब से एक साल में पच्चीस लाख एकड़ जमीन भूदान-यज्ञ में प्राप्त करने की बात कही गयी थी। देश के अधिकांश प्रान्तों में अपने-अपने प्रदेशों के लिए भूमि-प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित किया। इस काम को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए कई प्रदेशों में भूदान समितियों की स्थापना हुई। विनोबा ने कहा— “अब मैं सहस्रबाहु बनता हूँ। जो काम विनोबा अकेला करता था, वह काम अब देश के कोने-कोने में हजारों लोग अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार करेंगे।”

भूदान-आन्दोलन में यह एक नया प्रवाह था। आन्दोलन अब हृदय-प्रवेश की अवस्था से निकलकर जन-आन्दोलन बन चुका था। देश भर में नयी हवा का संचार होने लगा। जहाँ विनोबा का नाम भी कोई नहीं जानता था, वहाँ से भूदान-यज्ञ में आहुतियाँ मिलने लगीं। शंकररावजी देव, श्रीकृष्णदासजी जाजू, धीरेन्द्र मजूमदार, दादा धर्माधिकारी जैसे विचारक और कर्मठ व्यक्तियों ने भूदान की आवाज देश के कोने-कोने तक पहुँचाई। देश ने पहली बार यह अनुभव किया कि गांधीजी की अहिंसा फिर एक बार सजीव और सक्रिय हो उठी।

उत्तर प्रदेश में विनोबा को कदम-कदम पर जमीन मिलने लगी। तेलंगाना में विनोबा को रोजाना दो सौ एकड़ जमीन मिलती थी। सेवापुरी तक यह औसत तीन सौ एकड़ प्रति दिन तक चला गया। फिर यह गति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। रोज का औसत चार-पाँच सौ एकड़ तक जब पहुँचा, तब लोगों को आश्चर्य होने लगा। फिर तो औसतन हजार एकड़ तक आँकड़ा

पहुँच गया। सुलतानपुर जिले में तो विनोबा को पाँच दिनों में सत्रह हजार एकड़ जमीन मिली। इस प्रकार विनोबा की उत्तर प्रदेश यात्रा में पहली बार कार्यकर्ताओं के दिमाग में इस बात की स्पष्टता हुई कि यदि पूरी मेहनत की जाय तो भूमि की समस्या भूदान-यज्ञ से हल हो सकती है। तुलसीदासजी के बाँदा जिले में और इलाहाबाद तथा मिर्जापुर में विनोबा पर मानो दानपत्रों की वर्षा ही हुई। कानपुर जिले में प्रवेश करते ही विनोबा को इतनी जमीन मिल गयी, जितनी पहली किस्त में माँगी थी। कानपुर शहर के नागरिकों ने उन्हें दो हजार जोड़ी बैल देने का भी वादा किया। यहीं पर विनोबा ने अपने हाथों प्रथम भूमि-वितरण भी किया।

किन्तु इस काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना—“सबै भूमि गोपाल की” चरितार्थ करनेवाली—मँगरौठ गाँव की है। यहाँ के सभी भूमिधारियों ने अपनी सारी जमीन भूदान-यज्ञ में समर्पण की। उस गाँव का जीवन अब नयी बुनियाद पर शुरू हुआ। कौन कितनी जमीन जोतेगा, किसे कितनी उपज मिलनी चाहिए, कौन-सा उद्योग कौन करेगा? ये सारे प्रश्न ग्रामदृष्टि से सोचे जाने लगे। गांधीजी ने कई बार कहा था कि भारतवर्ष तो उसके लाखों देहातों में फैला है। विनोबा ने उसी विचार को नयी भाषा दी। उन्होंने कहा—देश का आयोजन दिल्ली जैसे शहर में नहीं, मँगरौठ जैसे गाँव में होना चाहिए। इस कल्पना को अमली रूप देने के लिए अब योग्य भूमिका तैयार हो गयी है। भारत का किसान जागने लगा है, उसने अपनी पारिवारिक भावना व्यापक की है और सारे गाँव को अपना कुटुम्ब मानने

का नमूना मँगरौठ जैसे गाँव में उपस्थित किया है। सोचेंगे तो सारे गाँव के लिए, काम करेंगे तो सारे गाँव के लिए, इस प्रकार स्वार्थ व्यापक होने लगा। अभी तो मँगरौठ में नये जीवन का आरम्भ ही हुआ है। पानी की व्यवस्था, ग्रामोद्योगों को विकसित करने की योजना, बच्चे के जन्म से लेकर आजीवन नयी तालीम की समग्र कल्पना, ग्राम-आरोग्य और ग्राम-न्याय की पूरी व्यवस्था करना अभी बाकी है।

समग्र ग्रामदान तो सर्वोदय का पहला कदम ही है। फिर भी यह अनिवार्य कदम है। भूमिदान-यज्ञ आन्दोलन ने अब यह सिद्ध कर दिया है कि हमारी सारी समस्याओं की जड़ में भूमि-समस्या है। उसे जब तक हम हल नहीं करते तब तक किसी रचनात्मक काम के लिए वातावरण नहीं बनता।

१४ सितम्बर '५२ के दिन विनोबा ने बिहार की भूमि में प्रवेश किया। ३१ दिसम्बर '५४ के दिन बिहार-यात्रा पूरी करके वे बंगाल की ओर रवाना हुए। बिहार-यात्रा के इस काल को हमने 'एकाग्र-प्रयोग का काल' कहा है।

बिहार की भूमि में पैर रखते ही विनोबा ने कहा—इस प्रान्त की पूरी भूमि समस्या का हल देखना चाहता हूँ। अभी उन्हें पूरी ४ एकड़ जमीन भी नहीं मिली थी, तभी उन्होंने कहा कि बिहार में मुझे ४० हजार एकड़ भूमि मिलनी चाहिए। विचार इस प्रकार था : उत्तर प्रदेश में विनोबा को ग्यारह महीनों के प्रवास में ३ लाख एकड़ से कुछ अधिक जमीन मिली थी। विनोबा ने सोचा, यदि इस प्रकार मैं एक प्रान्त से दूसरे

प्रान्त में जाता रहूँ तो मुझे हर साल दो-चार लाख एकड़ जमीन मिलती रहेगी। इस गति से यदि भारत की भूमि-समस्या हल होनेवाली हो तो पूरी समस्याएँ हल होने में सदियाँ लग जायँगी। भूदान के काम को हमने जो जमाने की माँग माना है, वह काम फिर जमाने से पिछड़ जायगा। इसलिए एक प्रान्त पर ही पूरी ताकत लगाकर उसकी पूरी भूमि-समस्या हल करने के बाद ही वहाँ से आगे चलने का उन्होंने तय किया। हिसाब लगाया गया। तय हुआ कि बिहार के सभी भूमिहीनों को बसाने के लिए बत्तीस लाख एकड़ भूमि चाहिए। चाण्डिल के सर्वोदय सम्मेलन में विनोबा ने अपना निश्चय फिर एक बार प्रकट किया।

यद्यपि चाण्डिल-सम्मेलन से बहुत पहले ही बिहार में भूदान-यज्ञ की काफी धूम मच गयी थी, फिर भी आरंभ के कई दिन बहुत कठिन गये। विनोबा ने कहा—जो कुएँ खोदता है उसे हमेशा मुलायम मिट्टी ही नहीं मिला करती। कभी-कभी कड़ी चट्टानें भी मिलती हैं और उन्हें तोड़ना पड़ता है। उन कड़ी चट्टानों के नीचे से जो जल निकलता है, वह उतना ही मृदु मधुर होता है, जितनी कि वे चट्टानें कठोर होती हैं। उन दिनों सभाएँ बड़ी-बड़ी होती थीं। दस हजार से तीस हजार तक लोगों की भीड़ अक्सर रहा करती थी। कोसों दूर से दर्शनार्थियों का ताँता लगा रहता था। लेकिन दान बहुत कम मिलते थे। कभी-कभी तो विनोबा को दिन भर में दो-चार एकड़ जमीन भी मुश्किल से मिलती थी। जमीन महँगी थी, नहर का किनारा था, बड़े-बड़े जमीन मालिक नहीं थे, जो थे वे भी विनोबा से दूर भागते थे। कार्यकर्ता

बाहर निकलना नहीं चाहते थे। स्थिति गंभीर होती जाती थी। लेकिन विनोबा घूमते ही रहे—और सतत घूमते रहे। समुद्र की लहरें चट्टानों से टकरातीं और टूट जातीं, फिर उठतीं और बार-बार टकरातीं और टूटती रहतीं। इस प्रकार सतत उठने, टकराने, टूटने और फिर उठने की क्रिया ने आखिर चट्टानों को टुक-टुक कर दिया। पहले छोटे किसानों ने दान दिया। किसी ने एकड़ दिया, किसी ने बीघा दिया, किसी ने कुछ कट्ठे दिये और किसी ने कुछ धूर ही दिये सही ! लेकिन लोग सोचने लगे, इस कट्ठे-कट्ठे के दान का क्या होगा ? छोटे लोगों से दान क्यों लिया जाता है ? इस प्रश्न पर हम आगे विस्तार से चर्चा करेंगे। लेकिन यहाँ एक कारण का जिक्र कर लें। छोटों के दानों से बड़ों को प्रेरणा मिलती है। जैसा कि ऊपर कहा है—छोटे-छोटे किसानों ने हजारों की तादाद में जो दान दिये उन छोटे-छोटे दानों से जो वातावरण पैदा हुआ—उसके नैतिक दबाव से बड़े लोगों की आँखें भी खुलीं। जब यज्ञ किया तब लाख-लाख लोगों ने हविर्भाग दिया और जब दान मिले तब भी लाख-लाख एकड़ों के दान मिले।

‘चाण्डिल-सम्मेलन’ से पहले बिहार में दो बड़ी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं। पटना में विनोबा ने सम्पत्ति-दान-यज्ञ का आरम्भ किया। भूमि के साथ सम्पत्ति के बँटवारे की कल्पना तो पहले से थी, पर नये भूमिहीनों को बसाने की आवश्यकता सम्पत्ति-दान के आरम्भ का निमित्त बनी। इस यज्ञ का प्रारंभ भी बेजमीनों की समस्या से जुड़ा हुआ है। ‘निधि’ का नाम सुनते ही ‘निधन’ का स्मरण करनेवाले और ‘ट्रस्ट’ की बात सुनते ही

‘डिस्ट्रस्ट’ (अविश्वास) करनेवाले विनोबा ने यह कोई नया ‘फण्ड’ नहीं शुरू किया। बल्कि जिस प्रकार भूदान-यज्ञ में उत्पादकों की मालिकी का संकेत था, उसी प्रकार सम्पत्ति-दान-यज्ञ में अस्तेय और अपरिग्रह के समाजीकरण द्वारा अर्थ-शुचित्व का संकेत था। प्रत्येक दाता अपना हिसाब अपने आप रखेगा और अपनी कमाई में समाज का हिस्सा स्वीकार करते हुए एक निश्चित हिस्सा—निश्चित रकम नहीं—विनोबा की सूचना के अनुसार खुद खर्च करेगा, यह है उसकी प्रक्रिया। इसमें धन इकट्ठा करने की योजना नहीं है। यह थी पहली महत्वपूर्ण घटना।

दूसरी महत्वपूर्ण घटना थी—श्री जयप्रकाश नारायण जी का इस आन्दोलन में प्रवेश। वर्षों से वे आत्म-परीक्षण कर रहे थे। गांधीजी का ‘ट्रस्टी-शिप’ का अमली स्वरूप उन्हें इस काम में दीख पड़ा। चाण्डल में जब विनोबा जी मलेरिया से पीड़ित थे, जीवन-मृत्यु के बीच उनकी नाव डोल रही थी, तब श्री जयप्रकाश नारायण का यह कहना कि—आप चिन्ता-मुक्त रहिए, हम लोग आपका काम उठा लेंगे, एक नयी आशा की किरण बन गया। गया जिले से विनोबा पहले एक लाख एकड़ की माँग कर चुके थे। वहाँ गाँव-गाँव में श्री जयप्रकाश नारायण संचार कर रहे थे। छोटे-छोटे किसानों ने सैकड़ों-हजारों की संख्या में दान दिया। बीसों ने अपना सर्वस्व समर्पण किया।

चाण्डल का सर्वोदय-सम्मेलन भूदान-यज्ञ के इतिहास में संस्मरणीय रहेगा। अगले ही दिन रामगढ़ के राजा ने एक लाख एकड़ भूमि का दान दिया था। बड़े जमींदारों के सहयोग का यह नया युग आरंभ हुआ। इसी सम्मेलन में विनोबा के प्रवचन ने

रचनात्मक कार्यकर्ताओं की वैचारिक-भूमिका स्पष्ट कर दी । उनके एक भाषण को तो लोगों ने सर्वोदय का 'घोषणापत्र' कहा ।

चाण्डिल के बाद भूदान की जैसी वाढ़ आयी, वैसी कभी पहले नहीं आयी थी । पलामू जिले में रंका के राजा विनोबा के साथ घूमे । उन्होंने पहले दो हजार पाँच सौ एकड़ का और फिर बारह हजार एकड़ का दान दिया था । यह दान कार्यकर्ताओं के माँगने पर दिया था । जब विनोबा ने पूछा—“आपने ऐसा क्यों किया ?” उन्होंने कहा—“जिसने जितना माँगा उसे उसना दिया ।” विनोबा ने फिर कहा—“अब मैं आपके पास आया हूँ, मुझे कितना देंगे ?”

“मेरे पास जो जमीन है, उसमें से जितनी आप माँगें उतनी दूँगा ।” विनोबा ने कहा—“आपके पास खुदकाश्त की जितनी जमीन है उसका छठा अंश और जितनी पड़ती जमीन है वह पूरी-की-पूरी दे दीजिए ।” राजा साहब ने मंजूर कर लिया और एक लाख दो एकड़ जमीन दे दी । महात्मा बुद्ध की जयन्ती का वह पावन दिन था । विनोबा ने इस दान को पूर्ण दान माना और भगवान् बुद्ध के नाम पर उसे समर्पित किया । एक पखवारा और बीता । राँची जिले में पालकोट के राजा ने चौवालीस हजार पाँच सौ एकड़ जमीन दी ।

एक दिन विनोबा ने कहा—“मुझे जो दान देता है, उसे मैं विष्णु समझता हूँ । लेकिन अब मुझे विष्णु सहस्रनाम सुनने की इच्छा है, इसलिए एक दिन मैं मुझे एक हजार दानपत्र चाहिए ।” विनोबा को कई दफा विष्णु सहस्रनाम भी सुनाये गये । एक ओर गरीबों से हजारों दानपत्र मिलते थे और दूसरी ओर एक-एक जमींदार से हजारों एकड़ जमीन मिलती थी । इस प्रकार क्रान्ति ने

दोनों मोरचें सँभालें रखे थे । हजारीबाग जिले ने तो हृद कर दी । वहाँ की कुल खेती-लायक जमीन करीब अठारह लाख एकड़ है । इसलिए पूरी भूमि-समस्या हल करने के लिए विनोबा ने तीन लाख एकड़ जमीन माँगी । मतलब यह था कि अगर उतनी जमीन पूरी हो जाय तो एक जिले में यह बात सिद्ध हो जायगी कि भूमि-समस्या प्रेम से हल हो सकती है । हजारीबाग जिले ने सात लाख एकड़ जमीन दान में दी । यहाँ केवल भूमि-समस्या ही हल होने की बात नहीं रही, बल्कि यह भी सिद्ध हुआ कि यहाँ अन्य भूमिहीनों को बसाने का काम भी हो सकता है । परन्तु हजारीबाग जिले में तो पड़ती जमीन अधिक है । इसलिए यहाँ अधिक जमीन मिली । ऐसे जिलों का क्या जहाँ जनसंख्या अधिक और जमीन कम है ? इस प्रश्न का जवाब गया जिले में देने की चेष्टा की गयी । यहाँ जमीन महँगी है, मालिक छोटे-छोटे हैं और भूमि-समस्या भी कठिन रही । विनोबा ने गया जिले को अपना प्रयोग-क्षेत्र बनाया । तीन बार गया जिले में भ्रमण किया—यह स्वीकार करना होगा कि गया जिले का लक्ष्यांक अभी पूरा नहीं हुआ है । फिर भी समस्या हल होकर रहेगी, इसमें शंका नहीं । यह जरूर है कि कार्यकर्ताओं को सतत जागरूक रहकर निष्ठापूर्वक काम में लगे रहना होगा ।

बोधगया के सर्वोदय-सम्मेलन की केन्द्रवर्ती घटना जीवन-दान में कार्यकर्ता जुटाने की दिशा में एक बड़ा काम था । घटना जितनी विलक्षण उतनी ही स्फूर्त थी । श्री जयप्रकाश नारायण जब बोलने के लिए खड़े हुए तब शायद उन्हें भी पता नहीं था कि वे एक नये यज्ञ के अध्वर्यु बनने जा रहे हैं । इस काम के लिए पूरा जीवन समर्पण करनेवाले कार्यकर्ताओं की माँग करते हुए

सबसे पहले उन्होंने अपने आप को ही अर्पण कर दिया—यह एक बहुत बड़ी घटना थी। देश का एक समर्थ राजनीतिज्ञ राजनीति छोड़कर लोकनीति की ओर कदम बढ़ा रहा था। वातावरण में बिजली-सी दौड़ गयी। दूसरे दिन विनोबा ने एक पत्र द्वारा 'भूदान-यज्ञ-मूलक ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसात्मक क्रान्ति' के लिए अपना जीवन समर्पण किया। जिनका पूरा जीवन सेवा के लिए ही था, उन्होंने भी अपने काम को 'भूदान-यज्ञ-मूलक' बनाने का निश्चय किया। अपनी सारी शक्ति इस काम पर केन्द्रित करने का संकल्प किया। इन बुजुर्गों के लिए जीवन-दान-यज्ञ की प्रतिज्ञा को दुहराना, शक्ति बढ़ाने का तथा चित्त-शुद्धि का एक साधन बना। नौजवानों ने नयी क्रान्ति के उत्साह से जीवन-दान किया।

मार्च १९५४ के बाद बिहार में सात लाख एकड़ जमीन मिली। भूमि-प्राप्ति के साथ भूमि-वितरण की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक था। देश भर में भूमि-वितरण के कार्यक्रम जगह-जगह आरंभ हुए। भूमि-प्राप्ति और वितरण के अब तक के आँकड़े इसी पुस्तक में अन्यत्र दिये गये हैं।*

बोधगया सम्मेलन से ही विनोबा ने तय कर लिया था कि वे बिहार छोड़कर कुछ दिन बंगाल में बितायेंगे और फिर उत्कल की ओर अग्रसर होंगे। उड़ीसा के लिए विनोबा ने भूमि-क्रान्ति का मंत्र दिया। अभी उस मंत्र का सगुण-साकार स्वरूप देश के सामने प्रकट होना बाकी है। लेकिन अब तक उड़ीसा ने जिस दिशा में

कार्य आरंभ किया है, उससे भविष्य के कुछ आसार दिखाई देने लगे हैं। वहाँ का सबसे बड़ा काम है समग्र ग्राम-दान। जहाँ विनोबा गये भी नहीं थे और जहाँ शायद कोई लब्धप्रतिष्ठ कार्यकर्ता भी नहीं पहुँच सका हो, वहाँ के लोगों ने भी ऐसा काम कर दिखाया जैसा और कहीं नहीं हुआ था। उड़ीसा के कुछ हिस्सों में, विशेषकर कोरापुट जिले, में समग्र ग्राम-दान का सिल-सिला शुरू हो गया। आज तक देश भर में जितने ग्रामदान हुए हैं, उनमें सबसे अधिक ग्राम-दान उड़ीसा में हुए हैं। तीन सौ ग्रामों के सबके सब भूमिवान् लोगों का अपनी चप्पा-चप्पा जमीन दे देना कोई साधारण बात नहीं है। उड़ीसा ने अब तक जितने ग्रामों का दान दिया है, उनसे एक तहसील तो आसानी से बन सकती है। यदि ऐसी पूरी तहसीलें या जिले के जिले अपनी पूरी की पूरी भूमि का पुनर्वितरण करने लगे तो हमें समझना चाहिए कि भूमि क्रान्ति की अवश्यम्भावी प्रक्रिया शुरू हुई है।

यहाँ हमने भूदान के इतिहास की सामान्य पृष्ठ भूमि आपके सामने रखी है। लेकिन उससे अधिक महत्त्व की चीज है, भूदान-यज्ञ की वैचारिक-भूमिका।

: ३ :

वैचारिक-भूमिका—१

वैदिक ऋषि ने पृथ्वी को प्रणाम करते हुए कहा—“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः”—पृथ्वी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंच महाभूतों का बना हुआ यह शरीर उन्हींके आधार पर टिकता है। सृष्टि की रचना ही इस प्रकार की है कि मनुष्य को जिस चीज की जितनी अधिक जरूरत हो, उतनी ही विपुल परिमाण में वह प्रकृति में पायी जाती है। वायु और आकाश के बिना मनुष्य कुछ क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। प्रकृति ने उनकी देन भी इतनी विपुल की है कि किसीको उसकी कमी का अनुभव नहीं होता।

मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं में जल और अन्न ये दो वस्तुएँ और हैं। आम तौर से जल भी इतने परिमाण में है कि हर किसी को मनचाहा मिल जाता है। रहा प्रश्न अन्न का। जल, तेज, वायु और आकाश की तरह अन्न भी प्रत्येक व्यक्ति को यथेष्ट मिलना चाहिए। भोजन पर मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। लेकिन मनुष्य का यह अधिकार मनुष्य द्वारा ही छीना जा रहा है। वैज्ञानिकों का आज भी कहना है कि पृथ्वी पर इतनी खाद्य सामग्री है कि आज जितनी आबादी है उससे कई गुनी बढ़ जाने पर वह कम पड़नेवाली नहीं है। लेकिन फिर भी दुनिया

की कुल आबादी में से तीन चौथाई हिस्सा अधभूखा या दुर्भिक्ष की सीमा पर रहनेवाला बनता जा रहा है। इस वैषम्य के कई कारणों में से एक प्रमुख कारण यह भी है कि हमने जल, तेज, वायु और आकाश की तरह पृथ्वी को भी मुक्त नहीं रखा है। जिसे साँस लेनी है, वह हवा लेता है। जिसे प्यास लगी है, वह पानी पीता है। उसी प्रकार जिसे भूख लगे, उसे खाना मिलना चाहिए। यह तभी हो सकेगा जब धरती पर काम करने की इच्छा रखने-वाले हर व्यक्ति को काम करने का अवसर मिले। आज का जो असमान बँटवारा है उसे समान करें। जिस पृथ्वी को वेदकाल से हमने माँ कहा है, उसका आज मनुष्य स्वामी बनना चाहता है। माँ जब तक दासी रहेगी, पुत्र सुखी नहीं रहेगा। हवा कभी यह नहीं कहती कि मैं छोटे बच्चे के फेफड़े में नहीं जाऊँगी। नदी कभी यह नहीं कहती कि मैं शेर को ही पानी पिलाऊँगी, बकरी को नहीं। सूर्य-किरणें कभी यह नहीं कहती कि हम राजप्रासादों में ही प्रवेश करेंगी, भोपड़ियों में नहीं। चूँकि ये जल, वायु, तेज भगवान् की देन हैं, वे सबके लिए समान हैं। इसी प्रकार भूमि भी भगवान् की देन होने के कारण हर जोतनेवाले को मिलनी ही चाहिए। हर एक भूमिपुत्र का अपनी माँ पर समान अधिकार है। भूदान-यज्ञ में जो भूमि माँगने और बाँटने की प्रक्रिया है उसके पीछे यही मूलभूत विचार है। भूमिदान-यज्ञ भूमि के न्याय्य बँटवारे की माँग है। हर मनुष्य में छिपी हुई सज्जनता को जगाकर भूमि-न्याय की स्थापना करने का वह कार्यक्रम है।

यह तो हुई भूदान-यज्ञ की बाह्य प्रक्रिया। भूदान-यज्ञ का कार्यक्रम तो सागर जैसा है। वह सागर के समान विशाल और

सागर के समान गहरा भी है। हमें उसकी विशालता और गहराई में भी प्रवेश करना चाहिए।

विनोबा ने भूदान-यज्ञ को 'प्रजासूय-यज्ञ' कहा है। प्राचीन परम्परा को आधुनिक जरूरत के साथ जोड़ देना, विनोबा की एक खूबी है। उन्होंने जिस प्रकार अपने इस आन्दोलन में प्राचीन दान, यज्ञ और तप आदि की परम्परा को आधुनिक आवश्यकता—भूख की समस्या, के साथ जोड़ दिया है, उसी प्रकार इस प्रजासूय-यज्ञ में राजसूय-यज्ञ की प्राचीन परम्परा को प्रजातंत्र की आज की विचारधारा के साथ जोड़कर एक अनोखा समन्वय किया है। यह प्रजासूय-यज्ञ प्रजा के द्वारा किया जाता है, प्रजा के लिए किया जाता है और उससे प्रजा ही ऊपर उठती है। इसलिए भूदान-यज्ञ का प्रजासूय-यज्ञ नाम देना उपयुक्त भी है।

'प्रजासूय-यज्ञ' शब्द को अच्छी तरह समझने के लिए हमें 'गीता-प्रवचन' पढ़ना चाहिए। इस पुस्तक में विनोबा का सम्पूर्ण जीवन-दर्शन गीता के आधार पर दिये गये प्रवचनों के रूप में आ जाता है। यों तो भूदान-यज्ञ आरंभ होने से बीस वर्ष पहले ये प्रवचन दिये गये थे। लेकिन विनोबा मानते हैं कि जो इस पुस्तक का अध्ययन करेगा, उसकी समझ में भूदान-यज्ञ की सारी विचारधारा सरलता से आ जायगी और उसे इस यज्ञ में अपना हिस्सा देने की प्रेरणा भी अवश्य मिलेगी। 'गीता-प्रवचन' के १७वें अध्याय में विनोबा ने 'यज्ञ' शब्द के उद्देश्य बताये हैं। सृष्टि में रहने के कारण सृष्टि का जो छीजन मनुष्य करता है, यानी सृष्टि की जो हानि करता है, उसे पूरा करना—यह यज्ञ का पहला उद्देश्य है। दूसरा हेतु है शुद्धीकरण—हम कुँए का

उपयोग करते हैं, उसके आसपास जो सृष्टि खराब हो जाती है उसे साफ करना—यह यज्ञ का दूसरा उद्देश्य है। क्षतिपूर्ति करने और सफाई करने के साथ ही कुछ प्रत्यक्ष निर्माण करना—यह यज्ञ का तीसरा उद्देश्य है।

अब हम यह देखें कि 'गीता-प्रवचन' की इस व्याख्या के अनुसार भूदान-यज्ञ में ये तीनों उद्देश्य किस प्रकार सधते हैं। अर्थात् इससे देश के कौन-से छीजन की पूर्ति होती है, कौन-सा शुद्धीकरण होता है और कौन-सा नवनिर्माण, यानी फल-प्राप्ति होती है?

आज हमारे ग्रामों का छीजन चल रहा है। हमारी ग्राम-लक्ष्मी आज क्षीण होती जाती है। आज से बीस साल पहले ग्रामों में जितने उद्योग-धन्धे थे, धीरे-धीरे वे मिटते जा रहे हैं। पुतली-घर की चिमनियाँ ज्यों-ज्यों ऊँची होती जा रही हैं, बुनकर की भोपड़ियाँ त्यों-त्यों नीचे धँसती जा रही हैं। देश का मुख्य सवाल बेरोजगारी का है। विषमता यह है कि जिसे भूख है, उसके पास अन्न नहीं है और जिसके पास अन्न है, उसके पास भूख नहीं है। तेल निकालने की मिलें खड़ी होती हैं, तो तेल-घानियाँ बन्द होती हैं। जूते बनाने के कारखाने खुलते हैं तो मोचियों का धन्धा जाता रहता है। यहाँ तक कि आजकल कुछ ऐसे कारखाने भी बन गये हैं, जिनमें एक साथ कई कुर्तों की सिलाई हो सकती है। यह स्वाभाविक है कि जहाँ एक साथ कई कुर्ते सिये जायेंगे, वहाँ एक साथ कई दर्जी भी बेकार बनेंगे। जहाँ एक तरफ से जन-संख्या की वृद्धि के कारण जमीन पर बोझ बढ़ रहा है, वहाँ दूसरी तरफ से अन्य धन्धों से बेकार हुए लोगों का बोझ भी बढ़ता

जा रहा है। चूंकि हमारे मुल्क के लोगों के लिए खेती का धन्धा एक प्रकार से सबसे सरल है, इसलिए जिसका धन्धा छूटा, वह भूमि पर मजदूरी करने की फिक्र करता है। इस प्रकार जिसे काम चाहिए, उसे काम न मिलने के कारण धरती माँ का पहला छोजन—हमारी ग्राम-लक्ष्मी का छोजन—होता है।

दूसरा छोजन उससे कुछ सूक्ष्म है। वह है विद्यादेवी का। हमारी शिक्षा आज नगराभिमुख बनी है। जिस भारत में राम-कृष्ण आदि राजवंशी बालकों को नगर छोड़कर वन-उपवन या ग्रामों में जीवन की प्रत्यक्ष शिक्षा लेने के लिए जाना पड़ता था, उसी भारतभूमि के ग्रामों में शिक्षा अब नामशेष-सी रह गयी है। ग्रामों में जो चतुर विद्यार्थी होते हैं, उनका या तो विकास ही रुक जाता है या फिर उन्हें शहरों में जाना पड़ता है। विश्व-विद्यालयों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में जो कमीशन नियुक्त किया गया था, उसकी रिपोर्ट के ग्राम-विद्यापीठवाले भाग में इस बात पर अच्छी तरह ध्यान आकर्षित किया गया है। उसमें अमरीकन शिक्षा-शास्त्री डॉ० मार्गन ने बताया है कि इतिहास की शिक्षा यह है कि जो देश अपनी ग्राम-शिक्षा और ग्राम-संस्कृति की चिन्ता नहीं करता, उसकी संस्कृति कुछ पीढ़ियों में खतम हो जाती है। इधर हमारी सारी शिक्षा ही मानो ग्रामों से विमुख हो गयी है। यह हमारे ग्रामों का दूसरे प्रकार से छोजन हो रहा है।

तीसरा छोजन राजलक्ष्मी का है। जनतंत्र और मजबूत मध्यवर्ती सरकार, ये दोनों चीजें सुसंगत नहीं हैं। सच्ची लोकशाही में तो सत्ता का विकेंद्रीकरण होना चाहिए।

जनतंत्र की छोटी-छोटी इकाइयों में स्वतंत्र ताकत जब होगी, तभी वह जनतंत्र यथार्थ जनतंत्र कहा जा सकता है। आज हमारे देश में कम से कम सत्ता ग्रामों के पास है।

भूदान-यज्ञ हमारे ग्राम-जीवन के—उसी ग्राम-जीवन के जो भारत के $\frac{1}{3}$ हिस्से का जीवन है—त्रिविध छीजन को रोकने के लिए है। जो बेजमीन हैं, उन्हें भूदान-यज्ञ में जमीन दी जाती है। इस प्रकार उन्हें काम करने के लिए सदा के लिए साधन मिल जाता है। आज जो सचमुच खेतिहर मजदूर हैं, उन्हें काम करने का अवसर मिलता है। आज बेजमीन मजदूर ही हमारे देश के सबसे अधिक गरीब, सबसे अधिक शोषित और दलित मानव हैं। उन्हें स्वतंत्र काम मिल जाने के कारण उनमें नया जीवन और नयी ताकत पैदा होती है। जंजीर की मजबूती उतनी ही समझी जाती है जितनी उसकी सबसे कमजोर कड़ी की होती है। भूदान के जरिये हम देश की सबसे कमजोर कड़ी को ताकतवर बनाते हैं। इससे सारे देश की ताकत बढ़ती है। इस बढ़ती हुई ताकत में से जो वातावरण पैदा होता है, उससे ग्रामोद्योग, नयी तालीम आदि देश-निर्माण के कार्यों के लिए रास्ते खुलते हैं। भूदान-यज्ञ से विनोबा हमारी व्यक्तिगत परिवार की भावना को व्यापक बनाकर ग्राम-परिवार की भावना बढ़ाना चाहते हैं। “सबै भूमि गोपाल की” इसका प्रथम सोपान है। ‘सभी भूमि गाँव की’ यह मानकर तीन सौ से अधिक ग्रामों ने अपनी पूरी जमीन दान में देकर पहला कदम उठाया है। इसीमें से नये ग्राम-निर्माण की नींव पड़ेगी, नया मनुष्य बनेगा और फिर नया समाज बनेगा। अपने गाँव में क्या पैदा करना है, कितना

बाहर से लाना है, हम अपने बच्चों को शिक्षा किस प्रकार की दें, आरोग्य, न्याय आदि का आयोजन कैसा हो, सभी बातें इस बुनियाद के आधार पर सोचेंगे और उनका अमल और विकास करेंगे।

यज्ञ का दूसरा उद्देश्य होता है वातावरण की शुद्धि। आज भी भग्नावशेष के रूप में जो यज्ञहवनादि चलते हैं, उनके प्रति भी लोगों की यह श्रद्धा है कि उनसे पापमुक्ति तथा वायु-शुद्धि होती है। वनस्पति घी के डिब्बे जलाने से जो धुँआँ पैदा होता है, उससे वायु-शुद्धि क्या होती होगी—यह हम नहीं बतला सकते। मगर भूदान-यज्ञ से वातावरण की शुद्धि की जो बात है—वह है अंतः-शुद्धि की बात। इस यज्ञ की खूबी यह है कि इसमें देनेवाले, लेने-वाले तथा दिलानेवाले तीनों की चित्त-शुद्धि की संभावना है। शुद्ध नीयत से देनेवाले की चित्त-शुद्धि तो जाहिर है। वह भोग की ओर से मुँह मोड़कर त्याग की ओर आगे बढ़ता है। वह जब देता है तब भूमि को माँ समझकर भूमिपुत्रों को उनका हक देता है। वह दूसरों को भिक्षा नहीं देता, स्वयम् प्रेम और श्रमनिष्ठा की दीक्षा लेता है। आज तक वह अपने लिए संग्रह करता था, आज वह दूसरों को अपना समझकर उनके लिए कुछ छोड़ता है। मोह में अशुद्धि है त्याग में शुद्धि। अपने हृदय के तारों को दरिद्रनारायण के हृदय के तारों से जोड़कर वह अपनी सर्वोत्तम अभिव्यंजना व्यक्त करता है।

“जो भूमि लेता है, उसकी चित्त-शुद्धि कैसे होती है? सेंटमेत में जमीन पाने से उसकी लोभवृत्ति बढ़ने की संभावना है न? नहीं तो वह दीन-भिखारी बनेगा।” भूदान-यज्ञ की प्रक्रिया

को केवल ऊपर-ऊपर से देखने के कारण कई बार इस प्रकार के आक्षेप उठते हैं। लेकिन वस्तुतः ऐसा नहीं है। भूमि-वितरण की प्रक्रिया को समझ लेने पर यह अच्छी तरह समझ में आ जायगा। यहाँ हम इतना समझ लें कि भूमिदान-यज्ञ से भूमि पानेवाले भूमिहीनों की चित्त-शुद्धि की क्या संभावना है। जो पराधीन हैं, उनकी चित्त-शुद्धि की गुंजाइश कहाँ? दूसरे की जमीन पर खटनेवाला अक्सर अत्यधिक काम के बोझ से चूर मन के भावों को दबाकर चुपचाप बैठ जाता है। पर चित्त-शुद्धि संयम में है; परवशता से मन को दबाने में नहीं। उपवास में जो शक्ति है, वह बिना अन्न के भूखे रहने में नहीं। भूमि-प्राप्ति तो बेजमीन को स्वाभिमान के साथ खड़ा होने की हिम्मत दिलाती है। स्वावलम्बन की इस निर्भयता में ही कायरों की चित्त-शुद्धि है। यदि बनी-बनायी, पकी-पकाई रोटी भूमिहीन को दी जाती तो वह जरूर दीन बनता। लेकिन भूमिदान-यज्ञ उसे रोटी नहीं देता, रोटी कमाने का साधन देता है। अपनी मेहनत का अन्न खाने का मौका देता है। जो भूमिहीन मजदूर दूसरे की जमीन पर मेहनत करने में जी चुराता है, उसे भूदान-यज्ञ श्रम-निष्ठा की दीक्षा देता है। उसकी मेहनत से जो अन्न पैदा होगा— वह संस्कृत कवि के “धर्मजानि कुसुमानि” (पसीने से पैदा हुए फूल) की तरह दस दिशाओं को सुगंधित करता है। चित्त-शुद्धि का सबसे रोमांचकारी दर्शन भूमि-वितरण के समय होता है। जब जमीन थोड़ी रहती है, तब भूमिहीनों से निर्णय करवाया जाता है कि कौन भूमि छोड़ेगा और कौन भूमि लेगा। जब भूमिहीन लोग पंच बनते हैं, तब उनके मुँह से परमेश्वर की वाणी

निकल आती है। पन्द्रह मिनट पहले जो आदमी यह कहता था कि हमें जमीन चाहिए, हम उस पर काश्त करेंगे—वही फिर कहता है कि हमें जमीन जरूर चाहिए, लेकिन मुझसे अधिक जरूरत उसकी है, पहले उसे दीजिए। जब सारी दुनिया में 'पहले मुझे, फिर उसे' की आवाज सुनाई देती है तब भूदान-यज्ञ में विनोबा भूमिहीनों के मुँह से भी 'पहले उसे, तब मुझे' की आवाज निकलवाते हैं। चित्त शुद्धि का इससे बढ़कर दूसरा उदाहरण कहाँ मिलेगा ?

जो सेवक भूमिदान-यज्ञ में जमीन दिलाने का काम करते हैं, उनके चित्त-शुद्धि की संभावना देनेवाले और लेनेवालों की चित्त-शुद्धि से कहीं अधिक है। भूमिदान-यज्ञ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें यात्री की नित्य प्रगति होती रहती है। यात्री से यहाँ मतलब विनोबा नहीं है। विनोबा तो भूमिदान-यज्ञ से पहले भी नित्य विकासशील रहे हैं। लेकिन हम तो उन सैकड़ों प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सेवकों का जिक्र कर रहे हैं, जो देश के कोने-कोने में विनोबा के कदम से कदम मिलाकर चल रहे हैं। यह सच है कि यात्रियों की इस यात्रा में नाजायज प्रसिद्धि, सफलता के कारण पैदा होनेवाला अहंभाव, पक्षों की दलदल में फँसने की संभावना, त्वरित परिणाम लाने की चेष्टा में सत्य से हटने की अधीरता आदि खतरे भी हैं। लेकिन इनसे सुरक्षा की ठोस दीवारें भी काफी हैं। इन सामान्य सेवकों के मार्ग में सर्वदा सफलता के फूल नहीं बिछे रहते। अक्सर उन्हें असफलता के काँटों को रौंदकर चलना पड़ता है। प्रसिद्धि की बात तो दूर रही, सेवक कभी-कभी हफ्तों तक चिट्ठी, अखबार, रेल, मोटर आदि तमाम चीजों से बिछुड़ा हुआ द्वार-द्वार भटकता फिरता

रहता है। उसका नाम भी कोई नहीं जानता, उसे खाना भी मुश्किल से मयस्सर होता है। पक्षातीत जनतंत्र के विचार का संदेश-वाहक होने के कारण उससे अक्सर विभिन्न पक्ष के बुद्धि-जीवी लोग भी खिंचे रहते हैं। भूमि के बँटवारे का मौका प्रत्यक्ष आ जाने के समय भूमि-प्राप्ति में उसने कितनी सत्यनिष्ठा रखी है, इसकी भी परीक्षा हो जाती है।

सेवक की चित्त-शुद्धि मुख्यतः उसने जिस वृत्ति से यह काम उठाया है, उस पर निर्भर है। विनोबा के कथनानुसार उसने यदि जन-जन के हृदय में सोये हुए राम को जगाने की वृत्ति रखी है तो उसकी चित्त-शुद्धि अवश्य होगी। वह इस श्रद्धा से चलता है कि हर मनुष्य में भलाई पड़ी हुई है। आज के सामाजिक वातावरण और वर्तमान विषम अर्थव्यवस्था के कारण वह प्रकट नहीं हो पाती—दबी पड़ी है। कारण ढूँढ़ने का काम सेवक का है। वह यदि नहीं ढूँढ़ सकता, तो पहले अन्यत्र नहीं, अपने में ही वह ढूँढ़ेगा। इसीसे उसकी चित्त-शुद्धि होगी। बिल्कुल अनजाने कोने से अगर अचानक कहीं मानवता की थोड़ी-सी भाँकी मिली, तो सेवक के मन में ऐसा विश्वास पैदा होता है जो उसके जीवन पर गहरा असर करता है। मानवता का दर्शन, उसका स्पर्श, उसे मानव बनने और बनाने में बहुत बड़ा सहायक होता है। मनुष्य के अन्तर में उसके सद्गुणों की राह से प्रवेश करना सेवक को स्वयं सद्गुणों की ओर ले जाने वाला है। इसके अतिरिक्त भी सेवक की चित्त-शुद्धि के लिए इस यज्ञ में अनेक अवसर हैं। रोज अनेक प्रकार के लोगों से मिलते रहने के कारण सहज ही उसमें विनय, शील एवं धैर्य

के गुणों का विकास होता है। दरिद्रनारायण से सहानुभूति रखनेवाला कार्यक्रम उठाने के कारण उसे सादगी की सहज प्रेरणा होती है। पदयात्रा आदि साधनों के कारण उसकी परिश्रम-निष्ठा और चिन्तनशीलता भी बढ़ती है।

भूदान-यज्ञ में देनेवाले, लेनेवाले तथा दिलानेवाले की त्रिविध अन्तःशुद्धि होती है। इस अन्तःशुद्धि की छूट दूसरों को भी लगे बिना नहीं रहती। इस प्रकार यज्ञ का दूसरा हेतु, वातावरण-शुद्धि, भूमिदान-यज्ञ में उत्तम रीति से परिपूर्ण होता है।

यज्ञ का तीसरा हेतु है, फल-प्राप्ति। भूदान-यज्ञ से जो फल प्राप्त करना है उसका तात्कालिक स्वरूप तो जाहिर है—गाँव की सारी भूमि का ग्रामीकरण करना, देहातों में प्रेमभाव स्थापित करना, परिवार-भावना व्यापक करते हुए “वसुधैव कुटुम्बकम्” की ओर पहला कदम उठाना। लेकिन भूदान-यज्ञ से जो फल-प्राप्ति करनी है वह केवल भूमि के पुनर्वितरण से ही सम्पन्न नहीं हो जाती। भूदान-यज्ञ के पीछे मूल विचार साम्य-योग का है। साम्ययोग तथा भूदान-आन्दोलन के राजनैतिक, तथा सांस्कृतिक पहलुओं की आगे एक अध्याय में चर्चा होगी। यहाँ हम केवल एक ही शब्द की चर्चा कर लेंगे जिसे विनोबा बार-बार इस्तेमाल करते हैं, जिसे गांधीजी भी अक्सर अपने सपने के स्वराज का चित्र खींचने के लिए इस्तेमाल करते थे। वह शब्द है ‘रामराज्य’। कुछ लोगों को रामराज्य शब्द में प्राचीनता की बू आती है, कुछ को साम्प्रदायिकता की। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारे भारत की आम जनता ‘रामराज्य’ शब्द को जनतंत्र, गणतंत्र, समाजवादी तंत्र आदि शब्दों की बनिस्बत

कहीं अधिक अच्छी तरह जानती है। गांधीजी देश की नब्ज (नाड़ी) पहचानते थे और जनता की समझ में आनेवाली भाषा में बोलते थे। भूदान-यज्ञ में जो फल प्राप्त करना है, उसे विनोबा ने 'रामराज्य' कहा है। तुलसीदासजी के शब्दों में हम उस राम-राज्य की व्याख्या देखें। उन्होंने "पराधीन सपनेहु सुख नाही" का जो महामंत्र दिया, उसे देशवासियों ने कंठस्थ कर लिया। इस मंत्र में हमारे देश की पहली माँग, स्वतंत्रता, की आवाज गूँज उठी। उसी प्रकार गोस्वामीजी ने रामराज्य का वर्णन इन पंक्तियों में किया है :—

“बैर न करहि काहु सन कोई

राम प्रताप विषमता खोई”

इस पद के पूर्वार्द्ध का फ्रांसीसी क्रान्ति की भाषा में अनुवाद करें, तो 'बन्धुता' होगा और उत्तरार्द्ध का अर्थ होगा 'समानता'। इस प्रकार उस क्रान्ति की भाषा में रामराज्य का मतलब होता है स्वतंत्रता, समानता और बन्धुता। फ्रांस देश ने ये तीनों शब्द दिये। लेकिन उनकी क्रान्ति से सिर्फ एक ही चीज सिद्ध हुई, स्वतंत्रता। समानता और बन्धुता पीछे छूट गयी। इसके बाद दुनिया ने एक दूसरी क्रान्ति देखी—रूस की, जिसमें समानता कुछ हद तक सिद्ध हुई। लेकिन बन्धुता उससे दूर रही और स्वतंत्रता कुचली गयी। लेकिन आज हमारे देश में जो क्रान्ति हो रही है, उसका आरंभ ही बापू ने बन्धुता के द्वारा किया। बन्धुता के जरिये स्वतंत्रता की प्राप्ति उन्होंने की—विनोबा उन्हीं के कदमों पर चलकर बन्धुता के जरिये स्वतंत्रता को टिकाये रखना चाहते हैं तथा समता कायम करना चाहते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं

कि भूदान-यज्ञ जगत् के इतिहास का एक अनोखा पृष्ठ बन जाता है। वास्तव में इस प्रेममयी क्रान्ति के जरिये विनोबा ने अहिंसा की दिशा में संसार को एक कदम आगे बढ़ाया है। बुद्ध, महावीर, ईसा ने जगत् को अहिंसा दिखाई, लेकिन वह अहिंसा व्यक्तिगत क्षेत्र तक सीमित थी। गांधीजी ने एक कदम आगे उठाया, उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा का प्रवेश सत्याग्रह के अपने अमोघ अस्त्र के द्वारा कराया। विनोबा आज उसी अहिंसा का प्रवेश अर्थनीति के क्षेत्र में भूदान-यज्ञ के जरिये करा रहे हैं।

वैचारिक-भूमिका—२

कभी-कभी विनोबा ऐसी बात कह देते हैं कि लोगों को धक्का-सा लगता है। कुछ शिक्षित कहे जानेवाले लोग तो विनोबा के शब्दों में अभिमान की ध्वनि भी सुनते हैं। लेकिन उनके एक-एक वचन के पीछे दीर्घकालीन तपस्या तथा गहरे चिन्तन का बल रहता है। जब जड़ और चेतन शब्दों को समझाते हुए विनोबा ने यह कहा—जड़ चाहे जितना महान् हो और चेतन चाहे जितना छोटा हो, फिर भी चेतन का महत्त्व जड़ से अधिक है, हिमालय महान् है लेकिन जड़ है, विनोबा छोटा है लेकिन चेतन है, विनोबा चाहे तो हिमालय को उत्तर से दक्षिण में फेंक सकता है, तब यह सुनकर लोग हक्के-बक्के रह गये। लेकिन विनोबा के दूसरे वाक्य ने इस वाक्य का जब मर्म समझाया, तो लोगों में नयी चेतना पैदा हुई। तुलना हिमालय और विनोबा की नहीं, जड़ और चेतन की है। उन्होंने कहा—विनोबा चेतन है, कल वह तिब्बत में चला जाय तो हिमालय अपने आप दक्षिण में चला जायगा। मगर हिमालय चाहे भी तो वह टस से मस नहीं हो सकता। भाषा चमत्कारी थी, लेकिन उसके पीछे चिन्तन भी था।

अकबरपुर (उत्तरप्रदेश) से विनोबा ने भारतवासियों के नाम एक अपील लिखी थी। उस अपील में उन्होंने भूदान-यज्ञ

के लिए तीन दावे किये थे। ये तीनों दावे ऐसे हैं, जिन्हें पढ़ते ही पहली बार तो यह विचार आ जाता है कि भूमि के हस्तान्तरित करने के इस प्रयोग के बारे में इतने बड़े-बड़े दावे करने का क्या प्रयोजन ?

लेकिन गहराई से सोचने पर हमें पता चलेगा कि इन्हीं तीन दावों में भूदान-यज्ञ की वैचारिक-भूमिका स्पष्ट हो जाती है। आइए, हम इन दावों पर विचार करें। विनोबा अपनी अपील में कहते हैं कि—“मेरा इस काम के लिए तिहरा दावा है। एक तो यह कि यह भारतीय संस्कृति के अनुकूल है। दूसरा इसमें सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति के बीज हैं और तीसरा इससे दुनिया में शान्ति-स्थापना के लिए मदद मिल सकती है।

क्या यह कार्यक्रम भारतीय संस्कृति के अनुकूल है? क्या वह उपनिषद्, गीता, वर्णाश्रम व्यवस्था, सन्तों की परम्परा के सानुकूल है? हाँ, वेद ने हमें सिखाया कि भूमि हमारी माँ है, उस माता का पुत्र आज उसका स्वामी बनना चाहता है। इस पाप को मिटाकर स्वामित्व-विसर्जन का कार्यक्रम भूदान-यज्ञ हमें देता है। उपनिषदों ने हमें सिखाया—

ईश का आवास यह सारा जगत्
जीवन यहाँ जो कुछ उसीसे व्याप्त है।
अतएव करके त्याग उसके नाम-से।
तू भोगता जा वह जो तुझे प्राप्त है।

ईशावास्योपनिषद् के इस मंत्र को आधुनिक जीवन में चरितार्थ करने का प्रयास ही भूमिदान-यज्ञ है, जिसमें सम्पत्ति को ईश्वर

की देन माना है तथा—“त्यक्तेन भुञ्जीथाः”—त्याग कर भोगना जिसका नीति-सूत्र बन जाता है। गीता-तत्त्वज्ञान के आधार पर तो विनोबा का पूरा जीवन ही खड़ा है। उनकी तपस्या के परिपाक-स्वरूप सूझा हुआ यह यज्ञ हर अर्थ में गीता के आदेश से सुसंगत है। इसीलिए तो विनोबा अपनी श्रद्धा बार-बार प्रकट करते हैं कि जो “गीता-प्रवचन” पढ़ेगा और समझेगा, वह जरूर दान देगा। गीता की आदर्श मूर्ति स्थितप्रज्ञ के लक्षणों का आरम्भ “मनोगत सभी काम तज दे जब पार्थ जो” से होता है और उसका पूरा वर्णन करने के बाद भी “सर्व काम परित्यागी विचरे नर निःस्पृह” से भगवान् प्रकरण पूरा करते हैं। भूदान-यज्ञ कामना छोड़ने का कार्यक्रम नहीं तो और क्या है? अधिक क्या कहें?—भूदान-यज्ञ की सारी परिभाषा ही विनोबा ने गीता से ली है। दान, यज्ञ, तप, तीनों गीता के प्रिय शब्द हैं। साम्ययोग शब्द भी विनोबा ने गीता से बनाया है। * गीता के छठे अध्याय श्लोक २९ से ३२ में साम्ययोगी का समग्र दर्शन है और फिर ३३वें श्लोक में अर्जुन साम्य से सिद्ध होनेवाले योग के बारे में प्रश्न पूछता है।

-
- * आत्मा को सर्वभूतों में आत्मा में सर्वभूत भी
 देखता योगयुक्तात्मा समदर्शी सभी कहें ॥२९॥
 मुझे जो सबमें देखे, सबको मुझ में तथा,
 मुझे न वह अप्राप्त, मैं अप्राप्त नहीं उसे ॥३०॥
 सर्वभूतस्थ मुझको जो योगी एक हो भजे,
 मुझ में बर्तता है सो सर्वथा बर्तता हुआ ॥३१॥

भारतीय संस्कृति में समाज-रचना के लिए जिस वर्णाश्रम व्यवस्था की कल्पना की गयी थी—भूदान-यज्ञ उस कल्पना के भी अनुकूल है। चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में वैश्य को छोड़कर शेष तीन के लिए सम्पत्ति-संग्रह की कल्पना ही नहीं है। वैश्यों के लिए भी ब्रह्मचर्याश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यास आश्रम में सम्पत्ति का संग्रह निषिद्ध है। गृहस्थाश्रम में भी सम्पत्ति-संग्रह की अनुज्ञा अन्य वर्णों के पोषण के लिए है। गृहस्थाश्रम का आदर्श तो शीघ्रता तथा सहजता से वानप्रस्थाश्रम तक जाने का ही है। भारतीय सन्तों ने भी यही त्याग की वाणी सदियों से कही है। सन्त शिरोमणि कबीर साहब कहते हैं—

“पानी बाढ़ो नाव में घर में बाढ़ो दाम,
दोनों हाथ उलीचिए यही सयानो काम।”

कबीर साहब की यह उपमा तो विनोबाजी को अत्यन्त प्रिय लगती है। बार-बार इस उपमा को विस्तार से समझाते हुए उन्हें आप पायेंगे। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास के “सबै भूमि गोपाल की” तथा “सम्पत्ति सब रघुपति कै आही”, भूदान-यज्ञ तथा सम्पत्तिदान-यज्ञ के मूलमंत्र बन गये हैं। तो क्या विनोबा इन सन्तों की वाणी की रट और एक बार लगा रहे हैं? यह सच है कि विनोबाजी सन्त-परम्परा के हैं, इसलिए कई बार उनकी वाणी में आप पुराने सन्तों की वाणी ही सुनेंगे।

आत्मोपम सभी को जो सर्वत्र समबुद्धि से,

सुख हो दुःख हो देखे, योगी परम हैं वही ॥३०॥

गीता संवाद अध्याय-६

लेकिन विनोबाजी की वाणी में एक विशेषता है, जो गांधीजी की वाणी में थी। सत्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह आदि इन सन्तों की वाणी में व्यक्तिगत गुण के रूप में दिखलायी पड़ते थे, उनका गांधीजी ने और विनोबा ने सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन किया। इस तरह जब व्यक्तिगत गुण सामाजिक मूल्य बन जाते हैं तब उनमें समाज-क्रान्ति की शक्ति आती है। सत्य-अहिंसा व्यक्तिगत गुण थे, लोग अपने निजी जीवन में उनका अमल करना जरूरी समझते थे। लेकिन राष्ट्र-राष्ट्र के बीच असत्याचरण राजनीतिक विशेषता समझी जाती थी और हिंसा को युद्ध के नाम से पूजकर कविगण उस पर महाकाव्य लिखते थे। लेकिन गांधीजी के सत्याग्रह ने सत्य-अहिंसा को सामाजिक मूल्य बनाया और उसमें महान् ब्रिटिश साम्राज्य से लोहा लेने की ताकत आयी। गांधीजी ने सत्याग्रह के द्वारा भय-निरसन कर जो सेवा की, वही सेवा विनोबा भूमिदान-यज्ञ के द्वारा लोभ-निरसन करके कर रहे हैं। अपरिग्रह और अस्तेय के गुणों के सामाजिक विनियोग का आशय यह है कि जिस प्रकार समाज में चोरी को सामाजिक गुनाह माना जाता है, उसी प्रकार नाजायज संग्रह को भी समाज गुनाह समझे। जो कांचनमुक्ति स्वामी रामकृष्ण ने अपने निजी जीवन में सफल की उसीको विनोबा के स्वप्नों का 'साम्ययोगी' समाज सामाजिक जीवन में सफल करेगा।

क्या वेद, क्या उपनिषद्, क्या गीता, क्या सन्त, सभी के मुँह से जो अपरिग्रह का मंत्र निकला, उसका सामाजिक स्वरूप आज भूदान-यज्ञ के रूप में हम देख रहे हैं। वास्तव में विनोबा के

मुंह से आज भारतीय संस्कृति बुलन्द आवाज से बोल रही है।

भूदान-यज्ञ के बारे में विनोबा का दूसरा दावा यह है कि इसमें आर्थिक और सामाजिक क्रांति के बीज हैं। इस बात को समझने के पहले हमें यह देख लेना चाहिए कि हमारी आर्थिक समस्या क्या है? यही न, कि जिसे भूख है उसके पास अन्न नहीं और जिसके पास अन्न है उसे भूख नहीं। यह समस्या हमारे अर्थतंत्र में खड़ी की है। हमारा अर्थतंत्र पूंजीवादी अर्थतंत्र है, जिसका सिद्धान्त है कि हरएक व्यक्ति अपना उत्कर्ष साधे तो समाज की उन्नति अपने आप हो जायगी। पूंजीवाद 'ज्यादा से ज्यादा काम और कम से कम दाम' के सिद्धान्त को चातुर्य समझता है। उपर्युक्त सूत्र का परिणाम यह आता है कि समाज का हरएक व्यक्ति अपनी-अपनी उन्नति, अपनी परिस्थिति, बुद्धि तथा शक्ति के अनुसार कम से कम काम करके अधिक से अधिक दाम पाने की दृष्टि से करता है। फलतः एक-दूसरे के स्वार्थ टकराते हैं। जिसमें मेरी उन्नति हो, संभव है उसमें आपकी अवनति हो। डाक्टर की उन्नति यदि पैसा कमाने से होती है और मरीजों की संख्या के अनुसार उसकी कमाई बढ़ती है तो उसका स्वार्थ इसीमें है कि लोग अधिक से अधिक बीमार हों। मरीज का स्वार्थ बीमार न पड़ने में है और डाक्टर का स्वार्थ दूसरों की बीमारी में है। अतः इन दोनों के स्वार्थ आपस में टकराते हैं, एक का अवसर दूसरे की आफत और एक की आफत दूसरे का अवसर है। यही है पूंजीवाद का अन्तर्गत विरोध, जो उसे खतम करेगा। पूंजीवाद को खतम करने के लिए बाहरी किसी कारण की जरूरत नहीं

रहेगी। वह अपने अन्तर्गत विरोध के कारण ही खतम होगा। हमारे सामने प्रश्न यह है कि जो पूँजीवादी समाज-रचना अपने अन्तर्गत विरोधों के कारण आत्महत्या करनेवाली है, उस आत्म-घाती समाज-रचना से हम क्यों चिपके रहें? यदि हम इस सामाजिक आत्महत्या से बचना चाहते हैं तो हमें यह समाज-रचना ही बदलनी होगी। आज की समाज-रचना के मूल्यों में जड़मूल से परिवर्तन करने होंगे और ऐसे नये मूल्य कायम करने होंगे, जिससे कोई किसीका शोषण न करे, जहाँ व्यक्ति और समाज के स्वार्थ एक-दूसरे के विरोधी नहीं—पूरक हों। इसी मूल्य-परिवर्तन की प्रक्रिया को कहते हैं क्रांति। भूदान-यज्ञ में पूँजीवाद के दो मूलभूत मूल्यों के परिवर्तन का संकेत है। पूँजीवाद के दो मूल्य हैं—मुनाफा और मालिकी की भावना। इन्हीं मूल्यों के आधार पर यह खड़ा है। विनोबा ने हमें मुनाफे के स्थान पर एक नया मूल्य दिया, जिसका नाम है दान, और मालिकी के नाम पर दूसरा मूल्य दिया, जिसका नाम है यज्ञ। विनोबा के 'दान' और 'यज्ञ' में मुनाफे और मालिकी के विसर्जन का संकेत है। मेरे पास यदि पच्चीस रोटियाँ हों और पाँच से मेरा पेट भरता है, इसलिए मैं बाकी बीस रोटियाँ बाँट देता हूँ, तो मैंने अपना मुनाफा बाँटा। यह हुआ दान। अमीर जो देता है वह दान है। लेकिन मेरे पास यदि तीन रोटियाँ ही हैं और मेरी भूख पाँच रोटियों की है फिर भी यदि किसी भूखे के लिए मैं अपनी तीन रोटियों में से डेढ़ रोटी दे देता हूँ, तो मैंने अपने मालिकी के हक में से बँटवारा किया। यह हुआ यज्ञ। गरीब जो करता है वह यज्ञ करता है। क्रांति में तीन चीजें जरूरी हैं—क्रान्ति का मकसद, मूल्य-परिवर्तन तथा क्रांति का

प्रतीक। मूल्य-परिवर्तन का विचार हमने ऊपर संक्षेप में किया। अब कुछ विचार इस क्रान्ति के उद्देश्य, कार्यक्रम तथा प्रतीकों के बारे में करें।

हमारी क्रान्ति का मकसद साफ है। हम अमीरी-गरीबी को खतम कर अमीर-गरीब को बचा लेना चाहते हैं। प्रश्न उठता है कि क्या अमीर को खतम किये बिना अमीरी खतम हो सकेगी? जमींदार को मारे बिना जमीन बँट जायगी? अंग्रेजों को मारे बिना अंग्रेजी हुकूमत जा चुकी है। राजाओं को मारे बिना रियासतें भी गयीं। फिर अमीर को खतम किये बिना अमीरी और जमींदार को मारे बिना जमींदारी नहीं जा सकती—यह विचार ही एक अपसिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को आप अपने जीवन के दो क्षेत्रों में लागू करके देखिये। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक से जाकर क्या यह कहेंगे कि अज्ञानी को खतम किये बिना अज्ञान खतम नहीं होगा? आरोग्य के क्षेत्र में डाक्टर से क्या यह कहेंगे कि रोगी को खतम किये बिना रोग खतम नहीं होगा? शिक्षा और आरोग्य के क्षेत्र में शिक्षक और डाक्टर का पुरुषार्थ अज्ञान और रोग को खतम कर अज्ञानी और रोगी को उबार लेने में है। ठीक इसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी का पुरुषार्थ गरीबी को खतम कर गरीब को बचा लेने और अमीरी को खतम कर अमीर को बचा लेने में है—यही उद्देश्य, शोषणहीन समाज-रचना, सर्वोदय या साम्ययोग का है।

साम्ययोगी समाज-रचना के लिए कार्यक्रम यह है कि जिसे भूख है उसके पास अन्न पैदा करने के साधन हों और जिसे भूख नहीं है उसके पास अन्न-उत्पादन के साधन न हों। अर्थात् उत्पा-

दन के साधन उत्पादकों के हाथ में पहुँचाना तथा अनुत्पादक की मालिकी खतम करना, यह क्रान्ति का कार्यक्रम है।

इस कार्यक्रम को अमल में लाने के लिए कौन-से साधन इस्तेमाल किये जायँ, इसकी चर्चा जब छिड़ती है तभी मतभेद की गुंजाइश रहती है। वरना यहाँ तक तो सभी विचारक सहमत हैं कि क्रान्ति जरूरी है और क्रान्ति का कार्यक्रम यही हो सकता है कि जरूरत की चीजें जरूरतमन्दों के पास हों, उत्पादन के साधन उत्पादकों के पास हों तथा अनुत्पादकों की मालिकी खतम हो।

साधनों की चर्चा करते हुए विनोबा ने अच्छा मार्ग-दर्शन किया है। वे कहते हैं कि आज तक क्रान्ति के लिए जो साधन इस्तेमाल किये गये हैं उन्हीं में मैं क्रान्ति कर रहा हूँ। आज तक दुनिया ने दो रास्ते आजमाये : एक कत्ल का, दूसरा कानून का। विनोबा आज तीसरा रास्ता आजमा रहे हैं—करुणा का, प्रेम का। कत्ल, कानून और करुणा के रास्ते क्रमशः तामसी, राजसी और सात्त्विक हैं। यहाँ पर इन तीनों की तुलना संक्षेप में कर लेना अप्रस्तुत नहीं होगा।

भूदान-यज्ञ कत्ल के रास्ते का निषेध करता है। सिर्फ इस-लिए नहीं कि बुद्ध, महावीर, ईसा और गाँधी ने हमें अहिंसा का उपदेश दिया था। क्रान्तिकारी कभी अंतिम पैगम्बरवादी नहीं होता। मुहम्मद साहब कह गये वह आखिरी शब्द—उसके बाद कुछ नये विचार नहीं उठ सकते; कार्ल मार्क्स ने जो बताया वही क्रान्ति का अन्तिम मार्ग, उसमें कोई संशोधन नहीं हो सकता; गाँधी कह गये वही शेष विचार, वह आगे नहीं बढ़ सकता;

ऐसा मानना दकियानूसी रूढ़िग्रस्त वृत्ति है। क्रान्तिकारी तो नित्य विकासशील जीवन के साथ अपने विचारों का भी विकास करता रहता है। क्रान्ति की इष्ट देवी सरस्वती है। क्रान्ति का विचार की शक्ति पर भरोसा है, किसी एक व्यक्ति के शब्द को क्रान्तिकारी अन्तिम नहीं मानता।

फिर भी भूदान-यज्ञ में कत्ल के रास्ते का निषेध है। क्यों? क्योंकि कत्ल के रास्ते से समस्या सुलभती नहीं, एक के बदले में दूसरी समस्या खड़ी हो जाती है। दिमाग बदलने की जगह सिर ही काट लेने का वह मार्ग है। कत्ल के रास्ते की दूसरी त्रुटि यह है कि कत्ल से शान्ति नहीं होती, हिंसा से हिंसा उत्तरोत्तर बढ़ती है। आग से आग नहीं बुझती। कत्ल के रास्ते की तीसरी त्रुटि यह है कि हिंसा से जो क्रान्ति होती है, उसमें प्रति-क्रान्ति की संभावना बनी रहती है। दुनिया भर की हिंसक क्रान्तियों का यही अनुभव है। हमारी क्रान्ति ऐसी होती है कि उसमें जिस वर्ग का परिवर्तन करना है उसका सहयोग हमें मिलता है। इसलिए उसमें प्रति-क्रान्ति की संभावना ही नहीं रह जाती है। कत्ल के रास्ते की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि वह जनतंत्र का मार्ग नहीं बन सकता। हिंसा कभी सभोका शस्त्र नहीं बन सकती। वह हमेशा कुछ चुने हुए सैनिकों का हथियार रहेगी। कत्ल के रास्ते से जो क्रान्ति होगी उसमें से आखिर लश्करशाही (मिलिटैरिज्म) ही पैदा होती है—लोकशाही नहीं। कत्ल के रास्ते के खिलाफ इससे ज्यादा दलीलें पेश करने की जरूरत नहीं है। आजकल जो कत्ल के रास्ते की बात करते हैं वे भी शान्ति के नाम पर ही उसकी हिमायत करते हैं।

लेकिन कानून का रास्ता उससे कहीं अधिक लुभावना है। जो काम कानून की एक कलम से हो सकता है उसे करने के लिए विनोबा इस प्रकार दर-दर क्यों फिरते होंगे ? यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि विनोबा कल के रास्ते का जैसा निषेध करते हैं, वैसा कानून के रास्ते का निषेध नहीं करेंगे। दिल्ली की पार्लियामेंट में यदि ऐसा कानून बने कि जमीन की मालिकी अब गाँव की होगी, तो उसके खिलाफ विनोबा भूख-हड़ताल या पिकेटिंग करने नहीं जायेंगे। वे उसका स्वागत ही करेंगे। लेकिन वे कानून के रास्ते की मर्यादाएँ जानते हैं। इसलिए उन्होंने ऐसा रास्ता लिया है जो सबसे अधिक कारगर है और सबसे अधिक गहराई में जाने-वाला है।

कानून की मर्यादाएँ क्या हैं ? कानून अधिक से अधिक कुछ करे, तो बुरी प्रवृत्ति से आदमी को रोक सकता है। लेकिन वह उसे सत्प्रवृत्ति की प्रेरणा नहीं दे सकता। कानून बुराई से रोक सकता है, लेकिन भलाई की प्रेरणा वह नहीं दे सकता। कानून की दूसरी मर्यादा यह है कि वह अधिकार देता है, लेकिन उस अधिकार का उपयोग करने की ताकत नहीं दे सकता। कानून की और एक कमजोरी यह है कि जनमत के आधार के बिना चाहे जितना अच्छा कानून हो, तो भी वह कारगर नहीं होता। पूंजीवाद में कानून का अधिष्ठान (आधार) पैसा बनता है। लश्करशाही में कानून का अधिष्ठान शस्त्रबल बनता है। पर जब तक उसके पीछे जाग्रत जनमत का अधिष्ठान नहीं होता, तब तक कानून निष्फल होता है। यह जनमत जाग्रत कैसे हो ? भूदान-यज्ञ जैसे जन-आन्दोलन से ही वह जाग्रत होता है।

जब भारत का बच्चा-बच्चा यह कहने लग जायेगा कि जमीन पर मालिकी सिर्फ भगवान् की (या समाज की) है, तब व्यक्तिगत मालिकी के निरसन का कानून बनने में कोई देर नहीं लगेगी।

कानून के मार्ग में कानूनी दलदल में फँस जाने की भी संभावना है। कानूनबाजी का दलदल भूलभुलैया जैसा होता है। उसमें प्रवेश करने पर सामान्य मनुष्य उसमें से आसानी से नहीं निकल सकता। इस कानूनबाजी का दुरुपयोग होने की, एक के बाद एक मुकदमा दाखिल करने की, संविधान बदलने की चेष्टा होने की भी संभावना रहती है। इसी को कहते हैं कानूनी क्षेत्र में प्रतिक्रान्ति। (Counter revolution in the legal sphere)

हमारी सारी शक्ति उस हालत में ऐसी कानूनी प्रतिक्रान्ति का मुकाबला करने में खप जायगी। और भी एक कठिनाई कानून के रास्ते में है। कानून दोनों पक्षों में कलह पैदा करता है, प्रेम नहीं। हमें गरीबी-अमीरी खतम कर आदमी को आदमी के निकट लाना है, उन्हें दूर नहीं करना है। कानूनी मार्ग से हमारा यह मुख्य अभिप्राय ही नष्ट हो जाता है।

अमीरी-गरीबी को खतम कर वर्ग-निराकरण करने का जो रास्ता विनोबा ने लिया है, वह है करुणा का मार्ग। करुणा के माने सिर्फ दया के नहीं हैं। दया के साथ जब अनुरूप क्रिया मिलती है तब करुणा बनती है। करुणा की इस प्रक्रिया का आधार आदमी का मन बदलने पर है। इस क्रान्ति को केवल वस्तु-परिवर्तन से संतोष नहीं है, वह चाहती है, मन-परिवर्तन, वृत्ति परिवर्तन। इतिहास में आज तक दो प्रकार की चेष्टाएँ हुई हैं। केवल समाज

को बदलने की तथा केवल आदमी को बदलने की। केवल समाज के बदलने की कोशिश में आदमी तानाशाही (Dictatorship) तक पहुँच गया। केवल मनुष्य बदलने की कोशिश में वह समाज छोड़कर गिरि-कंदराओं तक पहुँच गया। दोनों एकांगी मार्ग हुए। भूमि-दान-यज्ञ आदमी और समाज को साथ-साथ बदलना चाहता है। इसीलिए उसकी क्रान्ति विचार-परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन तथा परिस्थिति-परिवर्तन के तिहरे कार्यक्रम पर निर्भर है। यह एक ऐसा त्रिकोण है जिसकी भुजाओं का असर एक-दूसरे पर होता है। विचार-परिवर्तन से परिस्थिति बदल सकती है और परिस्थिति बदलने से विचार बदल सकता है। भूमिदान-यज्ञ में कुछ लोग जमाने के प्रवाह को समझकर विचारपूर्वक दान देते हैं, कुछ लोग दरिद्रनारायण के प्रति प्रेम-भाव के कारण देते हैं। ऐसे अनेक लोगों के दान के कारण वातावरण पर एक ऐसा नैतिक प्रभाव पड़ता है कि दूसरे लोग भी उसमें देते हैं। हजारों किसानों के छोटे-छोटे दानों के कारण जो नैतिक प्रभाव पड़ा उसे देखते हुए कई बड़े जमींदारों ने जमीनें दी हैं। यह परिस्थिति-परिवर्तन के कारण हुए मन-परिवर्तन का उदाहरण है।

करुणा के मार्ग पर जानेवाला इस श्रद्धा से चलता है कि मनुष्यमात्र में कहीं न कहीं अच्छाई का अंश छिपा पड़ा है। उसे खोजने की वह अखंड कोशिश करता है। करुणा का मार्ग सफल होगा या नहीं यह अब तर्क का विषय नहीं रहा। उसकी सफलता अब सिद्ध हो चुकी है। लाखों लोगों के दान ने, तीन सौ से अधिक ग्रामों के ग्रामदान ने और अनेक पावन प्रसंगों ने इसे

सिद्ध कर दिया है। इस क्रान्ति का प्रतीक है जमीन, जिस पर परिश्रम कर परिश्रम करनेवालों के युग का आरम्भ होगा।

भूदान-यज्ञ के लिए विनोबा ने तीसरा दावा यह किया है कि इससे दुनिया में शान्ति-स्थापना के लिए मदद मिल सकती है। कितना बुलन्द दावा ! मुट्ठी भर जमीन की लेन-देन के साथ कितनी बड़ी बात जोड़ दी है ? इस दावे को समझने के लिए हमें जगत् के रंगमंच को संक्षेप में तथा नम्रता के साथ समझ लेना चाहिए। साम्यवादी और पूंजीवादी देश आज एक-दूसरे के डर के कारण उत्तरोत्तर अधिक संहारकारी शस्त्रास्त्रों की खोज करते रहे हैं। इन देशों में से पहला वर्ग तानाशाही (Dictatorship) में विश्वास रखता है और दूसरा वर्ग जनतंत्र में। तानाशाही शीघ्र परिणामदायिनी होती है, इसलिए वह आकर्षक भी मालूम होती है। लेकिन हम उसे स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि तानाशाही मानवता में विश्वास नहीं रखती। आधुनिक तानाशाही के जनक हिटलर ने अपनी आत्मकथा में अपने जीवन का मूलमंत्र बतलाया है—बीस गधे मिलकर एक आदमी नहीं बनता। यानी अपने इर्दगिर्द के बीस गधों पर शासन करने के लिए वह खुद पैदा हुआ है, ऐसा हिटलर मानता था। अपने इर्दगिर्द के देशों पर शासन करना जर्मनी का हक है, अपने इर्दगिर्द की जातियों पर शासन करने का आर्यजाति का जन्मसिद्ध अधिकार है, ये सारे सिद्धान्त मानव को मानवीय स्वतंत्रता न देने के उपर्युक्त सिद्धान्त में से फलित हुए हैं। जो सिद्धान्त मानव को मानव नहीं मानता वह चाहे जितना शीघ्र परिणाम देनेवाला क्यों न हो

हम उसको स्वीकार नहीं कर सकते। अब रह जाता है जनतंत्र। आज परिस्थिति यह है कि जो जनतंत्रवाले देश हैं उनमें क्रांति की शक्ति नहीं दीख पड़ती। गरीबी-अमीरी को खतम करने की ताकत जिस लोकशाही में नहीं, उस लोकशाही का मतलब भी क्या है? इसलिए आज दुनिया के तमाम जनतंत्रात्मक देशों के सामने प्रश्न यह है कि जनतंत्र में क्रांति की शक्ति कैसे आये? इसी प्रश्न का उत्तर भूदान-यज्ञ देता है। वह कहता है कि जब तक हमारी लोकशाही संख्या-बल पर (Quantative) निर्भर रहेगी—आकारात्मक रहेगी—तब तक उसमें क्रांति की शक्ति पैदा नहीं होगी। उसके लिए जनतंत्र की बुनियाद बदलकर हमें उसे गुणात्मक (Qualitative) बनाना होगा। जो जनतंत्र मानवीय गुणों पर खड़ा नहीं होगा, केवल संख्या-बल पर खड़ा होगा, उसमें क्रांति की ताकत पैदा नहीं होगी। आकारात्मक जनतंत्र में सत्ता केन्द्रवर्ती होगी, सेवा नहीं। तो मानवीय गुणों का बीजारोपण होगा कहाँ से? यहीं पर विनोबा का चाण्डील का वह भव्य प्रवचन हमें प्रकाश देता है, जिसमें उन्होंने हिंसा-शक्ति की विरोधी, दंडशक्ति से निरपेक्ष ऐसी स्वतंत्र जनशक्ति के निर्माण का आवाहन किया था*। जहाँ इस प्रकार की जनशक्ति विकसित होती है वहीं गुणात्मक जनतंत्र कायम हो सकता है। और ऐसी जनशक्ति पैदा करने का एकमात्र उपाय है त्याग-मूलक जन-आन्दोलन। इसीलिए भूदान-यज्ञ विश्वशान्ति की दिशा में मार्गदर्शक बनता है। भूदान-यज्ञ से भारतीय जनता की जन-

* देखिये, 'सर्वोदय का घोषणा-पत्र'—विनोबा

शक्ति बढ़ेगी, उसका गुण-विकास होगा, जिसके कारण हमारे देश में ऐसा जनतंत्र कायम होगा जिसने जनतंत्र के यक्ष-प्रश्न गरीबी-अमीरी के सवाल को हल किया होगा। यदि जनतंत्र में क्रांति की शक्ति आती है, तो जनतंत्र बच जाता है। और यदि जनतंत्र बच जाता है, तो मानवता बच जाती है।

एक दूसरे दृष्टिकोण से इसी मसले को देखें। आज रूस और अमेरिका दोनों शान्ति की बातें करते हैं। रूस शान्ति के लिए स्टेलिन इनाम निकालता है, शान्ति के लिए प्रतिनिधि-मंडलों को विदेश भेजता है। लेकिन देश के आन्तरिक मामले को सुलझाने में उसकी वर्गविग्रह की नीति जाहिर है। बाह्यशान्ति, अन्तर् अशान्ति। अमेरिका देश के आन्तरिक मामलों में शान्ति की हिमायत करती है। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उसके ऐटम बम के प्रयोग जारी हैं। अन्तर् शान्ति, बाह्य अशान्ति। भारत की विदेश नीति इन दोनों विचारों से स्वतंत्र है। श्री जवाहरलाल नेहरू ने शान्ति की जो आवाज उठायी है उसकी ओर सारी दुनिया आशा से टकटकी लगाये देख रही है। लेकिन नेहरूजी की इस आवाज को ताकत कहाँ से मिलेगी? देश के प्रश्न यदि हम शान्ति से सुलझा सकेंगे तभी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हम शान्ति की बात कह सकेंगे। जिस पूँजीवाद और साम्यवाद से स्वतंत्र रहने का हम दावा करते हैं उसके दूत तो क्रमशः अमीरी और गरीबी के रूप में हमारे देश में मौजूद हैं। इन दोनों को जब तक हम हटाते नहीं तब तक हमारी अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-नीति में कोई ताकत नहीं आती। भूदान-यज्ञ यही ताकत हमें देता है।

भारतवर्ष के इतिहास को देखने से पता चलता है कि हमारे देश की दो खूबियाँ हैं—भारत ने कभी किसी देश पर राजनैतिक आक्रमण नहीं किया है और भारत में बाहर से जितनी संस्कृतियाँ आती गयीं वे सारी की सारी इस देश ने अपने महान् हृदय-संपुट में समा ली हैं। भारत में उत्तर भारत की पहाड़ी आर्य संस्कृति तथा दक्षिण भारत की सामूहिक संस्कृति का समन्वय हुआ। उत्तर भारत के बुद्ध-महावीर की आत्मज्ञान की विचारधारा दक्षिण में रामेश्वर तक जा पहुँची। दक्षिण से शंकराचार्य, रामानुज, माधवाचार्य ने उत्तर भारत की आत्मज्ञान की विचारधारा में दक्षिण भारत की भक्तिधारा मिला दी। भारत में राज्य तो अनेक थे, लेकिन सांस्कृतिक राज्य हमेशा आसेतु-हिमालय एक ही रहा। उसके बाद मुसलमान आये। उनमें से कुछ ने युद्ध का रास्ता लिया। कुछ ने प्रेम का। प्रेम के रास्ते-वालों का परिणाम हमारे देश पर काफी पड़ा। इस्लाम ने हमारी भेदमूलक जाति-व्यवस्था पर काफी आघात किये। अब तक भारत में जो संस्कृति का रसायन तैयार हो रहा था उसमें विज्ञान का अभाव था। योरप में उस समय विज्ञान की अनेक खोजें हुईं। इन वैज्ञानिक खोजों का लाभ उठाते हुए अंग्रेज भारत में आये और उन्होंने हमें पराधीन बनाया। संघर्ष शुरू हुआ। और संघर्ष के माध्यम से ही सम्मिश्रण पैदा हुआ। वह थी सामूहिक अहिंसा। विज्ञान की प्रगति के कारण आज दुनिया इतनी छोटी बन गयी है कि उसमें कोई आन्दोलन निरा एकान्तिक रह नहीं सकता। वह सामूहिक बन जाता है। वैसा ही हमारी अहिंसा का हुआ। जमाने की माँग स्वतंत्रता की थी। हम नि:-

शस्त्र थे, अंग्रेज जबर्दस्त सेनावाले थे । परिस्थिति हर तरह से अहिंसा धर्म के अनुकूल थी । जमाने की माँग जब धर्म के साथ मिल जाती है तब धर्म-चक्र-प्रवर्तन होता है । युग की माँग जब एक महापुरुष के मुँह से निकलती है तब वह युग-पुरुष कहलाता है । गांधीजी हमारे बीच में युग-पुरुष के रूप में आये । उन्होंने जमाने की माँग, स्वतंत्रता, को अहिंसा के साथ जोड़कर धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया । जगत् को सामूहिक अहिंसा की महान् भेंट मिली । जगत् के इतिहास में अब भारत की बेला आयी है । जिस सामूहिक अहिंसा का प्रवेश राजनीति के क्षेत्र में कर उसने स्वतंत्रता पायी उसी सामूहिक अहिंसा का प्रयोग आर्थिक, सामाजिक क्षेत्र में कर वह जगत् के सामने सर्वोदय समाज का आदर्श रखने जा रहा है । मनु महाराज ने हजारों वर्ष पहले कहा था : “स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः”—पृथ्वी के सब लोग भारत के श्रेष्ठ व्यक्तियों से चरित्र की शिक्षा लेंगे । हमारा और आपका यह परम सौभाग्य है कि पृथ्वी को आत्मज्ञान और विज्ञान के संयोग से निष्पन्न सामूहिक अहिंसा की प्रत्यक्ष शिक्षा देनेवाले दो युग-पुरुष हमने देखे—एक महात्मा गांधी और दूसरे विनोबा ।

थोड़ा-सा शंका-समाधान

भूदान-यज्ञ की वैचारिक भूमिका हमने देख ली है। देश तथा जगत् के इतिहास में भी वह किस प्रकार एक आवश्यक आन्दोलन बन गया है यह भी हमने देख लिया। भूदान-यज्ञ के व्यावहारिक पहलू पर हम आगे विचार करेंगे। यहाँ हम कुछ प्रश्नों को लेंगे जो कि अक्सर लोग इस आन्दोलन के विषय में पूछते हैं। यह स्वाभाविक है कि इतने बड़े आन्दोलन के विषय में नित्य नये प्रश्न उठते रहें। आज तक वैसे सैकड़ों प्रश्नों के उत्तर विनोबा अलग-अलग प्रसंगों पर दे चुके हैं। इस छोटी-सी पुस्तिका में उन सब प्रश्नों का समावेश करना शक्य भी नहीं है, जरूरी भी नहीं है। यहाँ तो उनमें से कुछ चुने हुए प्रश्नों को प्रश्नोत्तरी के रूप में ले लेते हैं।

प्रश्न : आप जमीन से आरम्भ क्यों करते हैं, कारखाने आदि से क्यों नहीं ?

उत्तर : हमारे देश में जो विषमता है उसका स्वरूप शहरों में तीव्र रूप में दीखता है। कारखाने के मालिक और मजदूर के बीच का अन्तर साफ नजर आता है। इसलिए यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। लेकिन यह कार्यक्रम जमीन से आरम्भ करने के कई जोरदार कारण हैं। पहला कारण यह है कि हमारी

सबसे बड़ी समस्या भूख है। भूख का जवाब अन्न है और अन्न उपजाने का साधन जमीन है।

दूसरा कारण यह है कि हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या जमीन पर जीती है। इसलिए हमारे देश में वही क्रांति राष्ट्र-व्यापी हो सकती है, जिसका सम्बन्ध कृषकों से है भारत की क्रांति की विभूति किसान ही होगा।

तीसरा कारण यह है कि उत्पादन के सारे साधनों का कच्चा माल धरती से निकलता है। कपास, कोयला, तेल, लोहा आदि सारी उत्पादन की सामग्री वसुंधरा धरित्री से ही निकलती है। इसलिए उत्पादक की मालिकी का आरंभ हम जमीन से करते हैं।

जमीन हमारी प्राथमिक आवश्यकता पूरी करती है। दूसरी विषमता कुछ देर तक सह्य जा सकती है, लेकिन जमीन की नहीं।

भूमि का प्रश्न कारखानों, उद्योग आदि से एक और अर्थ में भिन्नत्व रखता है। ये सारे कारखाने, उद्योग आदि तभी चल सकते हैं, तथा कायम रह सकते हैं, जब किसान की खेती अच्छी चले। जमीन से जो उत्पादन होता है, उस पर शेष उत्पादन अवलंबित है। जमीन ही यदि न रहे, तो बाकी चीजें बहुत बढ़ीं या न बढ़ीं, तो भी उनका जीवन की आवश्यकताओं से बहुत अधिक सम्बन्ध नहीं रहता। अतः एक बार जमीन का विषम-विभाजन दूर हुआ, तो शेष विषमताओं को तोड़ने की चाबी हाथ में आ जाती है। क्या यह संभव है कि भूमि का तो समान वितरण हो जाय पर और संपत्ति का न हो? प्रश्न किसे पहला स्थान दें, इतना ही है।

प्रश्न : इस प्रकार माँगने से काम कब तक पूरा होगा ?

उत्तर : इसका जवाब हम और आप पर निर्भर है। यदि हम सब अपनी पूरी ताकत लगायें तो कोई कारण नहीं कि देश के भूमिहीनों को जमीन दिलाने में विशेष देर लगे। लेकिन यदि हम उदासीन रहें और पूछते रहें कि यह आन्दोलन कब सफल होगा तो देर भी लग सकती है। क्रान्ति के आन्दोलनों की गति अंकगणित से नहीं नापी जाती, बीजगणित से नापी जाती है क्या। हम यह हिसाब कर सकते हैं कि घास की गंजी का एक तिनका जलने में एक सेकेण्ड लगा तो पूरी गंजी जलने में कितना समय लगेगा ? आपका हिसाब पूरा भी नहीं होगा, तब तक गंजी भस्मीभूत हो जायगी। गांधीजी ने जब नमक बनाया था तब कुछ गणिती लोग यह हिसाब करने लगे थे कि इस तरह समुद्र कब खाली होगा और नमक का भण्डार कब भरेगा। लेकिन इधर वे हिसाब कर रहे थे, उधर दिल्ली की राजधानी का सिंहासन डोल उठा था। अंकगणित में आँकड़े होते हैं। बीजगणित में संकेत। संकेतों की कीमत उतनी बढ़ सकती है जितनी हम उनके पीछे भावना भरें। गांधीजी के नमक बनाने में संकेत था, अन्यायी कानून के भंग का। उसी प्रकार भूदान-यज्ञ में मुनाफे और मालिकी के विसर्जन का संकेत है। हम यह हिसाब नहीं करते कि एक साल में एक लाख एकड़ जमीन मिली तो पाँच करोड़ एकड़ जमीन प्राप्त करने में कितने साल लगेंगे। पहले साल एक लाख एकड़ जमीन मिली थी, दूसरे साल सात लाख एकड़ जमीन मिली, तीसरे साल बाईस लाख एकड़ जमीन मिली।

श्री राममनोहर लोहिया ने एक निवेदन में कहा था कि इस

मार्ग से जमीन का प्रश्न हल करने में तीन सौ साल लगेंगे। विनोबा ने उसके जवाब में कहा था कि मेरे हिसाब से तो पाँच सौ वर्ष लगने चाहिए, क्योंकि एक साल में एक ही लाख एकड़ जमीन मिली है। लेकिन लोहियाजी कहते हैं कि यह काम तीन सौ वर्ष में पूरा होगा। इसका मतलब यह है कि पाँच सौ के तीन सौ वर्ष करने में मुझे लोहियाजी की मदद मिलेगी। लोहियाजी की मदद से यदि पाँच सौ के तीन सौ साल हो सकते हैं, तो जयप्रकाशजी की मदद से तीन सौ के तीस क्यों नहीं हो सकते? और जयप्रकाशजी की मदद से यदि तीस हो सकते हैं तो जनता की मदद से तीस के तीन क्यों नहीं हो सकते? विनोबा ने तो इस काम के पूरे होने के लिए १९५७ के साल की ओर इशारा भी कर दिया है। असल में यह प्रश्न हमारे विधायक पुरुषार्थ का है—गणित और अनुमान का नहीं।

प्रश्न : बड़े जमींदारों से जमीन माँगना तो ठीक है, मगर जिनके पास थोड़ी सी जमीन हो, ऐसे लोगों से क्यों माँगते हैं?

उत्तर : विनोबा ने इसके चार कारण बताये हैं : (१) वे समाज में हर किसीको अपने से बुरी हालतवाले आदमी के लिए कुछ-न-कुछ त्याग करने की प्रेरणा देना चाहते हैं। गंगा का पानी भी ऊपर से नीचे जाता है। छोटी-सी कटोरी में से जो पानी गिरता है वह भी ऊपर से नीचे ही जाता है। जिस प्रकार पानी का धर्म ऊपर से नीचे जाना है उस प्रकार मनुष्य का धर्म अपने से नीचेवालों की ओर देखना है।

(२) हमें मालिकी की भावना ही खतम करनी है। मालिकी की भावना अमीर की तरह गरीब में भी रहती है। बाबाजी को

अपनी लंगोटी की आसक्ति हो सकती है। आसक्ति-निरसन का कार्यक्रम छोटे-बड़े सबके लिए समान रूप से लागू होता है।

(३) छोटे लोगों के दान से एक नैतिक वातावरण पैदा होता है। छोटे लोगों की भोंपड़ी में बड़े लोगों की तिजोरी की कुंजी होती है। भोंपड़ी का द्वार खुलने से तिजोरी खुल सकती है।

(४) गुलामी के खिलाफ गुलाम लोग लड़ें थे, गरीबी के खिलाफ गरीब लोग लड़ेंगे। छोटे लोगों के दानपत्रों द्वारा गरीबों की सेना तैयार हो रही है। इसमें वर्ग-विग्रह की भावना नहीं है। क्योंकि दान देने वाले बड़े भी हमारी त्यागी सेना के सैनिक बन जायेंगे।

गरीब से दान लेने का एक कारण यह भी है कि हम गरीब को दीन नहीं बनने देना चाहते। वह थोड़ा-सा भी देगा तो बँटवारे के समय सिर ऊँचा रखकर भाग ले सकेगा।

और एक कारण यह भी है कि हम गरीब आदमी को दूसरे गरीबों से मिलाना चाहते हैं। आज तो दो बीघावाले का स्वार्थ, पाँच बीघावाले के स्वार्थ से टकराता है। गरीब भी गरीब का प्रतिस्पर्धी बनता है। यदि एक गरीब दूसरे गरीब के लिए कुछ-न-कुछ देने के लिए तैयार हो, तो गरीबों के बीच हृदय की एकता कायम होगी और गरीबों की ताकत पैदा होगी।

प्रश्न : गरीब अपने पूर्वजन्म के कर्मों के कारण गरीब है, उसके नसीब को आप कैसे बदल सकेंगे? क्या समानता की कल्पना ही कुदरत-विरोधी नहीं है?

उत्तर : पूर्वजन्म के पाप से जो अंधा पैदा हुआ है, उसे क्या आप लकड़ी नहीं देते? आप यदि पूर्वजन्म में विश्वास रखते हैं

तो इसके बाद पुनर्जन्म के लिए पुण्य भी करेंगे न ? नसीबवाद के कारण हमें पुरुषार्थ-हीन तो नहीं बनना चाहिए न ? असमानता दो प्रकार की होती है। एक ईश्वरकृत या कुदरती, दूसरी मनुष्य-कृत। एक माँ के दो बच्चे एक ही साथ पैदा हुए हों तो भी एक कमजोर और दूसरा सशक्त हो सकता है। इसे शायद हम कुदरती असमानता कह सकते हैं। लेकिन उस हालत में माँ क्या करती है ? वह कमजोर बालक को अधिक पौष्टिक खूरक खिलाती है। हम ईश्वरकृत असमानता को कम करने का नम्र प्रयत्न करते हैं। लेकिन मनुष्यकृत असमानता को तो मिटा देने का हमारा संकल्प है। गरीबी-अमीरी आदमी ने अपनी गलत अर्थ-व्यवस्था के कारण या स्वार्थपरता के कारण बनायी है। उसे हम खतम करते हैं तो कुदरत के खिलाफ नहीं, कुदरत के अनुकूल ही काम करते हैं।

प्रश्न : भूदान-यज्ञ से जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हो जायेंगे। इससे खेती का उत्पादन घटेगा।

उत्तर : विनोबा ने जो महान् क्रान्ति का काम उठाया है उसकी तुलना में यह प्रश्न बहुत गौण है। विनोबा तो कहते हैं कि आज जो हृदय के टुकड़े हो गये हैं उन्हें मैं जोड़ना चाहता हूँ। जमीन के टुकड़ों से मुझे हृदय के टुकड़ों की अधिक चिन्ता है।

वस्तुतः भूदान-यज्ञ से, जितनी कल्पना है, उतने छोटे टुकड़े होते नहीं। कोई आदमी अपनी दस एकड़ जमीन में से सवा एकड़ देता है तो केवल कागज पर विचार करने वाला यह सोचता है कि उसकी जमीन के दो टुकड़े हो गये। लेकिन आम तौर पर दाता के पास जमीन एक ही चक्र में नहीं होती। अक्सर वह अपनी जमीन

का एक अलग टुकड़ा देखकर ही दान देता है। कई बार तो दो-चार दाता अपनी वह जमीन देते हैं जो एक-दूसरे से लगी हुई हो। ऐसे प्रसंगों पर तो जमीन के टुकड़े बनने के बजाय टुकड़े जुड़ जाते हैं। वितरण के समय जमीन के टुकड़ों की हेरफेर कर एक चक में जमीन देने की भी यथासंभव कोशिश की जाती है।

इतना करने पर भी जमीन के टुकड़े रह गये तो उससे घबराने की कोई जरूरत नहीं है। 'पोषणक्षम टुकड़ा' Economic holding आखिर एक सापेक्ष शब्द है। यदि कोई कुदाली से खेती करता है तो उसे कम जमीन पुसाती है, कोई ट्रैक्टर से खेती करता है तो उसके लिए बड़ा टुकड़ा लाभदायी होगा। अतएव पोषणक्षम टुकड़ा साधनों की दृष्टि से तय करने के बजाय परिवार की जरूरत के आधार पर तय करना चाहिए। भारत की भूमि और जनसंख्या को देखते हुए बहुत बड़े टुकड़े हम हर एक किसान को दे ही नहीं सकेंगे।

छोटे टुकड़ों के कारण उत्पादन कम ही होता है यह मानना भी गलत है। दुनिया भर में फी-एकड़ पैदावार चीन और जापान देशों में सब से अधिक होती है, जहाँ जमीन बड़े टुकड़ों में नहीं, छोटे टुकड़ों में जोती जाती है।

इतिहास का एक अनुभव भी इस प्रश्न के साथ ध्यान में रखना चाहिए। जहाँ छोटे टुकड़ों की खेती हुई है वहाँ मनुष्य सहकार की ओर मुड़ा है। जहाँ विशाल टुकड़ों में खेती (लैटि-फंडिया) हुई है वहाँ तानाशाही राज्य-व्यवस्था के अनुकूल हवा बनी है।

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भूमिदान की प्रक्रिया का

आखिरी कदम समग्र ग्राम-दान है। उस हालत में जमीन के टुकड़ों का सवाल इतना तीव्र नहीं रहेगा।

प्रश्न : क्या अनपढ़ भूमिहीनों को जमीन देने के कारण उत्पादन नहीं घटेगा ?

उत्तर : भूमिहीन अनपढ़ हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वे खेती करना नहीं जानते। आज भी सारी दुनिया की खेती तो ये अनपढ़ मजदूर ही करते हैं, और अच्छी तरह करते हैं। उनमें यदि कोई कमी है तो वह योजना-शक्ति की। किस समय क्या काम करना यह शायद उन्हें नहीं सूझेगा। इसका सबसे बड़ा कारण तो यह है कि आज तक उन्होंने कोई जिम्मेवारी नहीं संभाली। जमीन मिलते ही उन्हें जिम्मेवारी का भान होगा। आज जो वृत्ति है उसके बदले में काम को अपना समझकर नया उत्साह आयेगा। आज से पहले कई बार कुछ भूमिहीनों को राजा के द्वारा जमीन देने के कार्यक्रम हुए हैं और कभी-कभी वे निष्फल रहे हैं। शायद इसीके अनुभव पर से यह प्रश्न उठा हो। ऐसे प्रसंगों में अक्सर हुआ यह है कि जमीनें अपर्याप्त मात्रा में दी गयी हैं, तथा साधन भी नहीं दिये गये। इसलिए भूमिहीन अपनी रोजी की फिक्र में जमीन पर पूरा समय काम भी नहीं कर सकता, न पूरे साधन ही जुटा सकता है। लेकिन भूमिदान-यज्ञ में आप जिसे जमीन देंगे उसे तो आप भूखा रखना नहीं चाहेंगे न? आप शायद उसे साधन भी जुटा देंगे। आपसे यदि वह न हो सके तो, संपत्तिदान या साधन-दान में से उसे साधन मिल सकते हैं। और आपके पास योजना-शक्ति हो तो क्या उसका लाभ भूमिहीन को नहीं देंगे? वह तो आपके परिवार का एक सदस्य बन जायेगा

न? आपकी योजना-शक्ति और उसकी उत्साह-भरी कार्य-शक्ति मिलकर तो शायद आज तक उस जमीन पर जितना उत्पादन होता था, उससे अधिक ही होगा। लेकिन फिर भी मान लीजिये कि कुछ जगह अनुभवहीन भूमिहीनों को जमीन देने के कारण उत्पादन घटा। तो उतनी जोखिम उठाकर भी गैर जिम्मेदार और अनुत्साही काश्तकारों को—जिनका अस्तित्व समाज के लिए एक खतरा-सा है—जिम्मेदार तथा समाजोपयोगी बनाना चाहिए।

प्रश्न : सहकारी खेती की तरफ भूदान-यज्ञ का रुख कैसा है?

उत्तर : वह उसका विरोध नहीं करता, लेकिन उसे अनिवार्य शर्त के तौर पर नहीं रखता। अंत में गाँव में किस प्रकार की खेती हो, उसका निर्णय ग्रामजन ही करेंगे।

परिस्थिति के अनुसार-जगह जगह अलग-अलग तरह की खेती हो सकती है। सहकार करने में जहाँ ज्यादातर किसान अनपढ़ हों वहाँ मैनेजर के हाथ में सारा कारोबार चले जाने का संभव रहता है। लेकिन अगर भूमिहीन स्वयं सहकारी खेती करना चाहेंगे तो उनको कोई रोकेंगा नहीं। बैल, सिंचाई आदि की व्यवस्था में तो शुरू से सहकार का प्रबंध सोचा जा सकता है।

प्रश्न : भूमि-वितरण के बाद जो आबादी बढ़ेगी उसका क्या ?

उत्तर : जनसंख्या का सवाल सिर्फ भूदान-यज्ञ के लिए ही नहीं लागू होता। वह हर प्रकार के आयोजन के लिए लागू है। एक बार भूमि का बटवारा कर दिया, इससे भूमि का प्रश्न सदा के

लिए हल हो गया, ऐसा मत मानिये। आज का भूमिदान-यज्ञ आज का सवाल हल करने के लिए है। इस संसार में सत्य के सिवा और कोई चीज शाश्वत नहीं है। इसलिए जब वह प्रश्न खड़ा होगा तब उस जमाने के लोग उसका उचित हल ढूँढ़ेंगे। फिर भी आज की योजना में उसके उपाय के बीज मौजूद हैं। भूमिदान-यज्ञ की अंतिम कल्पना तो यह है न, कि जमीन गाँव की होगी। गाँव में हर पंद्रह-बीस साल में एक बार फिर जमीन का बँटवारा किया जायेगा। और जनसंख्या बढ़ेगी तो साथ ही काम करने-वालों की संख्या भी तो बढ़ेगी। कृषि-विज्ञान भी प्रगति करेगा। पानी तथा खाद की व्यवस्था भी बढ़ेगी। उस हालत में आनेवाले कई वर्षों तक तो उत्तम प्रकार की खेती के जरिये हम ज्यादा लोगों को काम और खाना दे सकेंगे। खेती के साथ ही ग्रामोद्योग के विकास की भी कल्पना है। उसके कारण खेती पर से काफी बोझ घट सकता है।

प्रश्न : दान में मिली जमीन में से अधिकांश जमीन खराब होती है। ऐसी जमीन भूमिहीनों को देने से क्या फायदा ?

उत्तर : दान में मिली जमीन किस प्रकार की है उसका पता बँटवारे के समय चलता है। आज तक जो जमीन बाँटी गयी है उस पर से यह नहीं कहा जा सकता कि अधिकांश जमीन खराब मिलती है। अक्सर बड़े जमींदार जब जमीन के बड़े चक देते हैं, तब उनमें अच्छी-बुरी दोनों प्रकार की जमीन मिलती है। छोटे जमीन मालिकों ने लाखों की संख्या में जो दानपत्र दिये हैं उनमें से अधिकांश ने उत्तम जमीन दी है। विनोबा जब सब की सब जमीनें माँगते हैं तब उसमें अच्छी-बुरी सब प्रकार की जमीन

का समावेश होता है।^१ ऐसा पाया गया है कि जमीन खराब दी जाती है यह अफवाह अक्सर ऐसे लोग शुरू करते हैं, जिनके पास जमीन है, लेकिन जो स्वयं नहीं दे सके हैं। दूसरे का दान निम्न स्तर का है, ऐसा सिद्ध करने की उनकी चेष्टा होती है। हाँ, यह संभव है कि दाता वह जमीन देता है जो उसके रहने के स्थान से दूर हो या जो टुकड़ा उसकी अधिकांश जमीन से अलग दिशा में हो। यह जरूरी नहीं कि वह जमीन खराब ही हो। जो टुकड़ा देनेवाले के लिए आर्थिक दृष्टि से कम आमदनी का हो, संभव है कि लेनेवाला उसे खुशी से ले, क्योंकि उसके लिए तो वह जीवन-निर्वाह का आलम्बन बन जाता है।

अक्सर बड़े जमीन मालिक अपनी पूरी जमीन की सँभाल नहीं रख सकते। ऐसी हालत में जो टुकड़ा भूमिहीनों के पास जाता है उस पर पहले से अधिक उत्पादन होने की संभावना बढ़ती ही है।

इस विषय में और भी एक मुद्दे पर विचार करना चाहिए। भूमि यदि प्रेम से माँगने के बदले कानून से जबरदस्ती छीन ली जाती तो लोग अपने पास सबसे बढ़िया जमीन रखकर सबसे घटिया जमीन कानून के लिए अलग कर देते। आज भूदान-यज्ञ के जरिये उत्तमोत्तम जमीनें भी मिलती हैं। वह तो कानून के जरिये मिलती ही नहीं। और भूमिदान-यज्ञ जमीन के साथ जो सद्भावना ले आता है वह कानून के जरिये आती ही कहाँ से?

यह भी स्वीकार करना होगा कि कभी-कभी ऐसी जमीन भी मिलती है जिसे कोई भूमिहीन लेने के लिए तैयार नहीं होता। उस हालत में भूदान सेवक यह सोचता है कि दाता ने ऐसी जमीन

दी क्यों ? यह जाहिर है कि दाता ने प्रतिष्ठा की लालच से जमीन तो दी है। लेकिन उसके दिल में भूमिहीनों के प्रति प्रेमभाव नहीं पैदा हुआ। ऐसी अवस्था में भूदान-सेवक वह जमीन दाता को उसकी प्रतिष्ठा के साथ प्रेमपूर्वक लौटा देता है। ऐसे प्रसंगों में यदि दाता को प्रतिष्ठा की कुछ परवाह होती है, तो वह खराब जमीन के बदले में अच्छी जमीन भी दे देता है।

कई जगह ऐसी जमीनें भी मिली हैं जिन पर खेती नहीं हो सकती। लेकिन इस पर पत्थर तोड़ने का कायमी धंधा भूमिहीनों को मिल जाता है। यह धंधा कई बार कृषि से भी अधिक अच्छे उपार्जन का साधन बन जाता है।

जहाँ जरूरत हो वहाँ कुछ जमीन का गोचर, खाद के गड्ढे बनाने में या अन्य कोई सामाजिक काम में भी उपयोग होता है।

प्रश्न : एक ओर से आप जमीन माँग रहे हैं, दूसरी ओर से जमींदार लोग किसानों को बेदखली कर रहे हैं। आप बेदखली का विरोध क्यों नहीं करते ?

उत्तर : हम बेदखली का विरोध करते ही हैं। उत्तर प्रदेश के किसानों को तो विनोबा ने यहाँ तक कह दिया था कि आपको कोई जबरदस्ती से बेदखल करना चाहे तो आप मार खाइये, लेकिन खेत पर से मत हटिये। विनोबा की इस सलाह का बहुत अच्छा परिणाम हुआ था। बिहार में भी विनोबा ने बेदखली का जाहिर विरोध किया है। विनोबा तो कहते हैं कि वे किसीके काजी बनने नहीं जायेंगे। कानून जिसे चाहे जमीन की मालिकी दे। हम तो जमींदार से इतना ही कहेंगे कि किसान को भूमिहीन मत बनाओ। आप यदि बेदखली में मिली हुई जमीन हमें देंगे तो

उसे भी दान के तौर पर स्वीकार करेंगे। देनेवाले का पापच्छेद होगा और जमीन हम उसी को लौटा देंगे जिससे वह छीनी गयी है। भगड़ा यदि मिट जाता है तो हमें जमीन-मालिक को दान की प्रतिष्ठा देने में कोई हर्ज नहीं है।

भूदान के कार्यकर्ताओं से विनोबा यही कहेंगे कि यदि उनके प्रदेश में बेदखलियाँ चल रही हैं तो उनका फर्ज है कि वे इस विषय में दिलचस्पी लें। कई बार मामला भूमिदाताओं को जाकर नम्रता से समझाने से हल हो जाता है।

प्रश्न : यदि भूदान-यज्ञ सफल नहीं हुआ तो विनोबा क्या करेंगे ?

भूदान-यज्ञ सफल नहीं होगा, ऐसा मानकर आगे का विचार करना भी अश्रद्धा का सूचक है। विनोबा इस प्रकार सोच ही नहीं सकते। वे तो कहते हैं कि मैं किसी आप्तजन की बीमारी में जब औषधोपचार करता हूँ तब साथ-साथ यह नहीं सोचता कि यदि यह प्रयोग सफल नहीं हुआ तो अन्त्येष्टि क्रिया के लिए लकड़ी का भी इन्तजाम कर रखूँ।

असल में भूदान-यज्ञ के आज तक जो परिणाम हुए हैं, उनको देखते हुए उसके सफल होने की आशा अधिक दीख पड़ती है। यदि कहीं असफलता हुई है तो वह कार्यकर्ताओं की कमी के कारण, इस तरीके की सदोषता के कारण नहीं। बिहार में विनोबा भूमि-समस्या हल करना चाहते थे। बिहार छोड़ने से पहले वे अपने लक्ष्यांक तक नहीं पहुँच सके। ३२ लाख एकड़ जमीन की माँग थी। उसके बदले में २२ लाख एकड़ से कुछ अधिक जमीन मिली है। इससे निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि बिहार में

भूदान-आंदोलन सफल नहीं हुआ। लेकिन हमें इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि बिहार के कुल देहातों में से केवल एक-तिहाई देहातों तक भूदान का संदेश पहुँच पाया है। फिर भी इतना बड़ा परिणाम आया है। इससे यही पता लगता है कि यदि त्रुटि है तो हमारे प्रयत्न में है, तरीके में नहीं।

फिर भी यदि सन् १९५७ तक भूमि-समस्या हल नहीं होती तो अहिंसा की मर्यादा में रहते हुए जितने भी और उपाय किये जा सकते हैं, उनसे विनोबा हिचकिचायेंगे नहीं। लेकिन असहयोग, सत्याग्रह आदि साधन अंतिम हैं। उससे पहले समझाने के पूरे प्रयत्न तो हो जाने चाहिए न? और सत्याग्रह के लिए सत्याग्रही की अपनी भी तो कुछ तैयारी चाहिए? भूमिदान यज्ञ के लिए जो कोशिशें होती हैं, उनसे यह तैयारी भी सहज ही हो जाती है। लेकिन बहुत संभव है कि उसका मौका ही न आवे।

प्रश्न : भूमिदान तो आप माँग रहे हैं, परंतु कभी षष्ठांश की माँग करते हैं, कभी पूरे गाँव की, कभी कुछ। एक बार आप अपना भूमि-वितरण संबंधी स्पष्ट चित्र हमें बता दीजिये कि वह कैसा रहेगा?

उत्तर : विनोबा ने यह कहा है कि 'भूमि भगवान् की है, उसकी ओर से समाज की है और वह रहेगी जोतनेवाले के पास।' यानी भूमि का स्वामित्व हमने व्यक्तिगत नहीं माना है। भूमिदान-यज्ञ का भूमि संबंधी अंतिम ध्येय है, गाँव की सारी जमीन गाँव-समाज की मालकियत की बनाना। लेकिन यह कदम हम एकदम नहीं उठा रहे हैं। क्योंकि हमारी प्रक्रिया विचार-क्रान्ति की प्रक्रिया है। इसलिए पहला प्रश्न हमने हाथ में लिया, गाँव के

बेजमीन मजदूरों का, जिन्हें सर्वप्रथम आवश्यक जमीन मुहैया करानी है। सारे-देश से औसतन छठा-हिस्सा प्राप्त हो जाने पर बेजमीनों का प्रश्न हल हो जाता है। यह हमने पीछे के प्रकरणों में देखा है। इस प्रश्न के हल करने में ही हमने यह भी भूमिका रखी है कि हर घर एक अधिक व्यापक परिवार का अंगरूप-में माना जाय, और व्यापक परिवार के लिए उसके हक का छठा हिस्सा प्राप्त हो।

इसके बाद की हमारी माँग है कि जितनी आप स्वयं जोत सकते हैं, उतनी ही जमीन रखें। बाकी जमीन गाँव-समाज को अर्पण हो, जिसमें से गाँव-समाज कम जमीनवालों को पर्याप्त जमीनें देगा और उन बेजमीनों को भी देगा, जिन्हें अब तक न मिली हो। यह माँग अर्थात्, उन्हीं लोगों से ही है, जिनके पास षष्ठांश देने के बाद भी पर्याप्त जमीनें बच जाती हैं। परन्तु यह माँग भी हम विचार-परिवर्तन द्वारा ही उनके सामने रखते हैं और कहते हैं कि जहाँ आपने भूमि का निजी स्वामित्व तज दिया, वहाँ जरूरत के मुताबिक ही जमीन रखने की भी स्वीकृति दे दी। षष्ठांश के बाद की यह प्रक्रिया है। आज ही इसका भी आरंभ कई जगह हो चुका है।

हमारी अंतिम माँग है, सर्वप्रथम सारी की सारी जमीन गाँव की मालकियत की बनाकर गाँव-समाज को वह अर्पित कर दें। यह गाँव-समाज सारे गाँव का अविरোধी सर्वसम्मति से चुना हुआ प्रतिनिधि मंडल होगा। सबका प्रतिनिधित्व उसमें बराबर और अनिवार्यतः रहेगा।

फिर यह गाँव-समाज या सर्वोदय-मंडल प्रत्येक की आव-

शक्यता देखेगा कि उसके घर में कितने प्राणी हैं, कितने जोत सकते हैं, कितनी भूमि गाँव में है। फिर गाँव की भूमि के अनुपात में वह प्रत्येक खेतिहर को, जो खेती करना चाहेगा, जमीन बाँट देगा। यह जमीन प्रति व्यक्ति एक एकड़ होगी—ऐसा हमारा अंदाज है। कहीं दो एकड़ भी हो सकती है, कहीं अधिक भी। कहीं ज्यादा जमीन बचे, तो अन्यत्र के भूमिहीनों को भी आमंत्रित किया जायेगा, जहाँ उनके लिए जमीन बच ही न सकी हो।

इस प्रकार सबकी व्यक्तिगत आवश्यकता और जमीन का परिमाण देखकर जमीन बाँटी जायगी, परन्तु उसमें दो शर्तें रहेंगी। एक तो कुछ जमीन गाँव के सामूहिक उपयोग के लिए रख ली जायगी, जिसमें सबको अपना श्रमदान देना होगा और फलप्राप्ति भी सबके लिए होगी, जिसमें से गाँव के सामूहिक खर्च चलेंगे। दूसरे, चरागाह आदि के लिए भी कुछ जमीन छोड़ दी जायगी।

एक बात यहाँ स्पष्ट है कि जो जमीन दी जायगी, वह जोतने और खाने के लिए दी जायगी, जिसमें १५-२० साल के बाद कमी-बेशी भी हो सकेगी। किसी घर में प्राणी बढ़ेंगे, तो गाँव-वालों को सामूहिक जमीन में से देनी पड़ेगी। प्राणी घटेंगे, तो उनसे जमीन लेनी और दूसरों को देनी होगी या सामूहिक जमीन में मिला देनी होगी। यानी एक तरह से यह सामूहिक जमीन हमारी भूमि-बैंक होगी, जिसमें से आवश्यकतानुसार कोई जमीन ले-दे सकेगा—अर्थात् हर पंद्रह या बीस साल के बाद सबकी सम्मति से। इस भूमि में बहुत छोटे-छोटे टुकड़े न पड़ें, इसका ध्यान तो रखा जायेगा ही।

एक प्रश्न यह भी खड़ा होता है कि यदि जमीन अपर्याप्त हो, तो आप क्या करेंगे ? हमने ऊपर कहा है कि जहाँ बेजमीन ज्यादा हों और जमीन कम हो, वहाँ से बेजमीन वालों को अन्यत्र भी भेजना होगा, जहाँ बहुत जमीनें पड़ी हों। और पड़ती जमीन भी तो हमें तोड़नी होगी। कभी नये गाँव भी बसाने होंगे। पीलीभीत (उ० प्र०) में ७॥ हजार एकड़ का एक पूरा चक मिला है, वहाँ दूसरी जगह के भूमिहीनों को बसाने के सिवा कोई मार्ग ही नहीं है, क्योंकि वहाँ के भूमिहीनों की आवश्यकता से अधिक वहाँ जमीनें हैं।

फिर इसके साथ हमने ग्रामोद्योगों को भी इस योजना का एक अनिवार्य अंग माना है, क्योंकि एक या आध-एकड़ जमीन प्रतिव्यक्ति देने से ही किसान का काम नहीं चलेगा, उसका जीवन स्वावलम्बी बनाने के लिए ग्रामोद्योग भी देने होंगे। ग्रामोद्योग क्या, कैसे होंगे आदि की चर्चा का यह स्थान नहीं है, परन्तु ग्रामोद्योग एक अनिवार्य आवश्यकता है, यह स्पष्ट है।

इस प्रकार—

- (१) षष्ठांश, प्रथम कदम,
- (२) जो जोते वही जमीन रखे, यह दूसरा कदम और
- (३) अंत में सारी जमीन गाँव-समाज को अर्पित करके, फिर उससे अपनी आवश्यकतानुसार लेना—गाँव की जमीन के अनुपात में—यह तीसरा कदम। अर्थात् यह सब अहिंसक प्रक्रिया द्वारा ही होगा।

यह आवश्यक नहीं कि पहले के बाद दूसरा और फिर तीसरा, ऐसे क्रम से ही ये कदम उठें। कहीं तीसरा कदम ही सर्वप्रथम

उठ सकता है, जैसे उड़ीसा में अब तक ३०० के करीब पूरे गाँव के गाँव विनोबा को मिल चुके हैं। वहाँ तो तीसरे कदम के प्रकाश में ही जमीन का वितरण होगा।

हमने यह भी माना है कि प्रथम कदम में तो मजदूरों की गुंजाइश है, पर दूसरे और तीसरे कदम में मजदूर नाम का कोई प्राणी नहीं रहेगा और सहयोग तथा सहकार की भावना से आवश्यकतानुसार प्रत्येक को मदद मिलेगी। ग्राम-जीवन में मदद तो हर किसी को मिलेगी। अतः ग्राम-जीवन में सहकार और सहयोग हमें अनिवार्य रूप से दाखिल करना होगा।

: ६ :

भूमि सम्बन्धी 'कुछ आँकड़े

भूदान-आन्दोलन का आरंभ तेलंगाना की विषम अवस्था में हुआ। लेकिन तेलंगाना में भूमि के बँटवारे की जो विषमता थी, वही कमबेशी मात्रा में देश भर में मौजूद है। यह सच है कि तेलंगाना में जो स्फोटकता थी, वह सब जगह नहीं है, लेकिन जमीन का अन्यायपूर्ण वितरण तो हर जगह है। वैसे ही भारत में जनसंख्या के अनुपात से जमीन का परिमाण बहुत कम है। उसमें भी चंद लोगों के पास ज्यादा जमीन है, अधिकांश के पास कम। करोड़ों लोग ऐसे हैं, जो साल भर भूमि पर मेहनत करते हैं, लेकिन जो अन्न को खुद पकाते हैं उसके वे मालिक नहीं हैं। हजारों ऐसे भी हैं जो जमीन के मालिक तो हैं, लेकिन जिन्हें यह भी पता नहीं कि उनकी जमीन किस जगह है। आइये, हिन्दुस्तान की भूमि-समस्या के कुछ आँकड़ों का अध्ययन करें।

भारत का कुल क्षेत्रफल १२,६९,६४० वर्गमील है। लेकिन उसमें से २६,६३,७२,००० एकड़ भूमि पर आज खेती होती है। बंजर या पड़ती जमीन में से खेती के लायक जो जमीनें हैं उनको हम उसमें मिला लें, तो भारत के प्रत्येक नागरिक के लिये औसत ७ एकड़, याने करीब पौन एकड़, जमीन आती है। लेकिन इस गणना में वे लोग भी शामिल हैं, जो खेती पर निर्भर नहीं हैं।

सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या ३५,६६,९४३,८९ है। इनमें से २४,९१,२३,४४९ लोग खेती पर निर्भर हैं। यानी कुल जन-संख्या के ६९.८ प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर हैं। खेती पर निर्भर लोगों की संख्या दूसरे उद्योगप्रधान देशों की तुलना में कहीं अधिक है। १९२१ में ग्रेट-ब्रिटेन में २०.७ प्रतिशत, जर्मनी में ३७.८ प्रतिशत और फ्रान्स में ५३.६ प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर थे। यह भी देखा गया है कि जब कि अन्य औद्योगिक राष्ट्रों में भूमि पर जनसंख्या का भार उत्तरोत्तर घटता जाता है, भारत में वह बढ़ रहा है। १८७० में ब्रिटेन में ३८.२ प्रतिशत, जर्मनी में ६१.० प्रतिशत, फ्रांस में ६७.६ प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर थे। १९२१ के बाद के वहाँ के आँकड़े अभी उपलब्ध नहीं हो सके हैं। उद्योगों के बढ़ने के कारण इन देशों में खेती पर जनसंख्या का भार घट रहा है। भारत में सन् १८८१ में ५८.० प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर थे, सन् १९५१ में ६९.८ प्रतिशत निर्भर थे। ये आँकड़े बताते हैं कि ग्रामोद्योगों के टूट जाने के कारण हमारे देश में खेती पर बोझ और भी बढ़ रहा है।

जो जनसंख्या खेती पर निर्भर है, उसका बँटवारा नीचे लिखे अनुसार है :

अपनी जमीन खुद जोतनेवाले	१६८० लाख, ४६.९ प्र० श०
दूसरों की जमीन जोतनेवाले	३१६ लाख, ८.९ प्र० श०
भूमिहीन मजदूर	४४८ लाख, १२.५ प्र० श०
जमीन-मालिक जो खुद कास्त नहीं करते	५३ लाख, १.५ प्र० श०

इन आँकड़ों से यह पता चलता है कि हर छह भूमिवानों के

पीछे एक भूमिहीन मजदूर है। इसीलिए विनोबा छोटे भाग की माँग करते हैं। यह भी समझ लेना चाहिए कि दूसरे की जमीन पर काश्त करनेवाले ८९ प्रतिशत किसान भी प्रायः भूमिहीन ही हैं। किसी भी समय उनकी जमीन छीनी जाने का भय उनके सिर पर सवार रहता है। जो भूमिवान् समझे जाते हैं, उनके पास भी जमीन समानता से नहीं बँटी है। अधिक लोगों के पास कम जमीन है। उदाहरणार्थ उत्कल में जमीन जोतनेवाले किसानों के २६.७ प्रतिशत परिवारों के पास तो १ एकड़ से कम जमीन है। कम-ज्यादा परिमाण में देश भर में परिस्थिति वैसी ही है। नीचे का तस्त्ता देखिये :

भारत के कुछ बड़े राज्यों में जमीन के विभाजन की वर्तमान स्थिति

राज्य	५ एकड़ से कम जमीन वाले किसान		५ से २० एकड़ जमीन वाले किसान		१० से ज्यादा एकड़ जमीन वाले	
	जनसंख्या %	जमीन %	जनसंख्या %	जमीन %	जनसंख्या %	जमीन %
आसाम	६६.०	२६.०	२५.५	३३	११.५	४१
उड़ीसा	७४.०	३०.०	२२.५	४३	३.५	२७
उत्तर प्रदेश	८१.०	३६.०	१६.५	३६	२.५	२२
बंबई	५२.०	१४.०	२६.०	४४	६	४२
मध्य प्रदेश	५१.०	१०.०	३५.०	३१	१४	५६
मद्रास	८२.०	४१.०	११.०	२७	७	३२
त्रावणकोरकोचीन	६४.०	४४.०	५.०	२२	१	३४
मैसूर	६६.०	२५.०	३३.०	५६	१	२६

हमें अफसोस है कि 'अ' वर्ग के राज्यों में बिहार, पंजाब, तथा पश्चिम बंगाल के पूरे आँकड़े हमें मिले नहीं हैं। लेकिन जो आँकड़े हैं वे भी वहाँ की भूमि-समस्या की कल्पना कराने के लिए काफी हैं; बिहार में ५ एकड़ से कम जमीन रखनेवाले किसान ८३% हैं, ५ से ५० एकड़ तक के १६% और ५० से ज्यादा-वाले सिर्फ ७% हैं। पश्चिम बंगाल में २ एकड़ से कम जमीनवाले किसान ३४% हैं, २ से ४ एकड़ वाले २८% हैं और ४ से अधिक एकड़वाले ३८% हैं। पंजाब में खेती पर निर्भर लोगों में से करीब ७० लाख भूमिहीन मजदूर हैं।

सारे देश की भूमि-समस्या का कुछ ख्याल नीचे दिये भूमि-हीन मजदूरों की संख्या के आँकड़ों पर से भी आ सकता है।

राज्य	खेती पर निर्भर जनसंख्या	खेती-मजदूरी पर निर्भर जनसंख्या
आसाम	७२,४१,१७२	१,५६,०२३
बिहार	३,४६,११,२५४	८७,६५,२०२
उड़ीसा	१,१६,१२,३६३	१८,०३,६६८
उत्तर प्रदेश	४,६८,६६,६७२	३६,१२,२०६
पश्चिमी बंगाल	१,४१,६५,१६१	३०,४१,८८१
पूर्वी पंजाब	८०,६८,५६७	१,६२,६७७
बंबई	२,२०,६८,२६३	३२,५२,५४६
मध्यप्रदेश	१,६१,४८,८७६	४३,३६,२८२
मद्रास	३,७०,२२,७६०	१,०३,६३,३६२
त्रावणकोर कोचीन	५०,६०,३०६	१८,७१,७६७
मैसूर	६३,४३,३६०	६,१५,८५३
हैदराबाद	१,२७,१४,८२४	३२,६६,७७३
मध्यभारत	५७,४४,४०६	८,८४,६१८
राजस्थान	१,०८,३६,६३६	८,७४,६६६
पेप्सू	३५,३४,६८४	३,५८,६७६
सौराष्ट्र	१६,२६,१२०	१,५५,५८५
विध्यप्रदेश	३२,१४,३६४	६,२६,८१३
हिमाचल प्रदेश	६,१४,२३८	६२,०६८
दिल्ली	१,७२,१८६	२६,२७६
अजमेर	३,१४,६०५	१६,५६८
त्रिपुरा	४,८०,८६२	३०,८८६
कुर्ग	१,३२,३०३	२४,५३३
कच्छ	२,३८,५८१	१६,८६५
भोपाल	५,४८,३३०	१,६७,४२५
विलासपुर	१,१४,३६८	१,६८६

व्यावहारिक पहलू

पोचमपल्ली में भूदान-यज्ञ का जो बीज बोया गया उसका अब तो एक विशाल वृक्ष बन गया है। उस वृक्ष से अनेक शाखाएँ भी निकली हैं, तथा फूली-फली हैं। भूदान-यज्ञ के व्यावहारिक पहलू का अध्ययन हम इन्हीं शाखाओं के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करके करेंगे।

इस आंदोलन में जो भिन्न-भिन्न दान लिये जाते हैं वे निम्न प्रकार के हैं: भूमिदान, संपत्तिदान, श्रमदान, साधन-दान, कूप-दान, अलंकार-दान, बुद्धि-दान और जीवन-दान।

भूमिदान में उत्पादन के साधन की मालिकी उत्पादक के हाथ में देने की प्रक्रिया और अनुत्पादक की मालिकी खतम होने की प्रक्रिया है। जमीन-मालिक किसी भूदान-सेवक के पास, या आम सभा में या पत्र द्वारा जमीन का दान देने का अपना संकल्प जाहिर करता है। वहाँ से भूदान की प्रत्यक्ष प्रक्रिया शुरू होती है। आम तौर से जमीन मालिक उस समय एक दानपत्र पर अपने दस्तखत कर देता है। इस दानपत्र का एक नमूना इस पुस्तक में परिशिष्ट (२) के रूप में अंत में दिया गया है। संकल्प जाहिर करते समय दानपत्र की कुछ शर्तें छूट गयी हों, तो बाद में वे भरवा ली जाती हैं। दानपत्र भरने के बाद, जब तक उस भूमि का वितरण

न हो, तब तक दाता उस जमीन पर उसी प्रकार खेती करता है, जैसी वह पहले करता था। उस जमीन के वितरण से पहले यदि वह कोई फसल लेता है तो अपना खर्च निकालकर जो मुनाफा उसे उस खेत में से हुआ हो, उसे वह भूमिदान-समिति को दे सकता है। दानपत्र भरने के बाद दाता को विशेष कुछ करने को नहीं रहता। हाँ उससे यह अपेक्षा जरूर रखी जाती है, कि वह भूदान का साहित्य पढ़े और नये दान पाने में मदद भी करे। भूमि-वितरण की क्रिया का वर्णन इसी अध्याय में आगे दिया जायगा।

संपत्तिदान पैसे का दान नहीं है। उसमें दाता अपनी कमाई का एक निश्चित हिस्सा हर साल नियमित रूप से देने का संकल्प करता है। यह रकम भी वह भूदान-समिति को या विनोबा को दे नहीं देता। वह उसे अपने ही पास अलग रखता है और विनोबा की सूचना के अनुसार उसका उपयोग करता है। संपत्ति-दान की रकम का उपयोग फिलहाल तीन मदों में होता है :

(१) भूमिहीनों को बसाने के लिए जरूरी साधन आदि खरीदने में।

(२) त्यागी सेवकों के निर्वाह के लिए।

(३) सत्साहित्य-प्रचार में मदद के रूप में।

संपत्तिदान-यज्ञ में अपरिग्रह और अर्थ-शुचित्व का संकेत है। इस विषय में अधिक जानकारी श्री जाजूजी की “संपत्ति-दान-यज्ञ” नामक पुस्तिका में मिल सकती है। संपत्ति-दान-पत्र का नमूना परिशिष्ट (३) में दिया है।

जो लोग भूमि और संपत्ति नहीं दे सकते वे भ्रमदान दे सकते हैं। भूमिहीनों को पड़ती जमीनें मिलती हैं, तब उन्हें तोड़कर

खेती के लायक बनाने के लिए श्रम की जरूरत होती है। कुएँ, तालाब आदि खोदने में भी श्रम की जरूरत होती है। आज तक कई भूमिहीनों ने, विद्यार्थियों तथा मध्यवित्त लोगों ने श्रमदान यज्ञ में प्रत्यक्ष हिस्सा लिया है। श्रमदान-यज्ञ में श्रम की, श्रमिक की प्रतिष्ठा का संकेत है। इसके बारे में अधिक जानकारी श्री शिवाजी भावे की “श्रम-दान” पुस्तिका से मिलेगी।

जिन भूमिहीनों को नयी जमीन दी जाती है उन्हें कार्य आरंभ करने के लिए हल, बैल और खेती के अन्य सारे साधन चाहिए। इसमें मदद करने के लिए साधनदान दिये जाते हैं। आम तौर पर ये साधनदान भी दानपत्र के रूप में ही लिये जाते हैं। वितरण के समय दाता से कहा जाता है कि आप अपने हल का दान इस भूमिहीन को दीजिये—आदि। कुछ भूमिदान समितियाँ साधनदान के लिए नकद रकम भी स्वीकार करती हैं। लेकिन यह नियम नहीं, अपवाद है।

जिन भूमिहीनों को जमीन दी जाती है उनकी जमीन में कुएँ खुदवा देना भी भूदान-यज्ञ के नवनिर्माण का एक अंग है। कुओं के लिए लोगों से खास दान लिया जाता है, जिसे कूपदान कहा जाता है। वास्तव में यह दान साधनदान का ही एक अंग है। कुएँ के लिए दान तीन प्रकार से लिया जाता है—सीमेण्ट, लोहा आदि साधन के रूप में, अलंकारों के रूप में (जो बाद में बेचकर उस नकद रकम का उपयोग कुएँ खुदवाने में होता है), और पैसे में।

कूपदान के लिए अलंकार-दान का उल्लेख अभी किया गया। इस यज्ञ में बहनें विशेष हिस्सा ले सकती हैं और लेती भी हैं। इस

आन्दोलन में स्वर्गीय जमिनालाल जी बजाज की धर्मपत्नी जानकी-देवी बजाज बहुत दिलचस्पी ले रही हैं। विनोबा तो अपनी लाक्षणिकता से कहते ही हैं कि “गहनों ने बहनों को दबा दिया है। मैं उन्हें अलंकार-दान के द्वारा भयमुक्त करना चाहता हूँ।”

इतने विवरण से ही पाठकों को पता चला होगा कि भूमि-प्राप्ति से भी कहीं अधिक कठिन काम भूमि-वितरण का है तथा उससे भी अधिक धैर्य तथा सावधानी का काम नवनिर्माण का है। पाँच करोड़ एकड़ जमीन प्राप्त करना छोटा काम नहीं है। उसे भूमिहीनों में न्याय-पुरस्सर बाँटना भी कठिन काम है। और देश भर में जमीन के लिए साधन प्राप्त करने में सिंचाई का प्रबन्ध करना, जहाँ नये गाँव बसाने हों वहाँ ग्राम-रचना करना, ग्रामोद्योग नयी तालीम, ग्राम-आरोग्य, न्याय-व्यवस्था आदि का प्रबन्ध करना तो भगीरथ काम है। देश के सामने नवनिर्माण का यह एक अद्वितीय काम है। वह कठिन है, इसीलिए उत्साहवर्धक भी है।

यहीं पर बुद्धिदान और जीवनदान का महत्व समझ में आता है। बुद्धिदान के सिलसिले में विनोबा ने एक-दो जगह वकीलों से भूमिहीन लोगों के लिये मुफ्त में वकालत करने के लिए कहा था। बुद्धिदान का यह भी एक प्रकार है। यहाँ बुद्धिदान समाप्त नहीं हो जाता, न विनोबा वैसा कहते ही हैं। वास्तव में नव-निर्माण के महान् कार्य में देश के हर एक बुद्धिमान आदमी की बुद्धि लगने के लिए अवकाश है एवं वही व्यापक बुद्धिदान है। देहाती इंजीनियर की जरूरत है, शिक्षक की जरूरत है, वैद्य की जरूरत है, कानून जाननेवाले की जरूरत है। इन सब लोगों की

बुद्धि का दान भी बुद्धिदान में आ जाता है । बुद्धिदान में बुद्धि-जीवी और श्रमजीवी के भेद-निराकरण का संकेत है ।

इस महान् कार्य के लिए अपना पूरा जीवन लगाने को कहते हैं **जीवनदान** । इसकी विशेष जानकारी के लिए पाठक श्री जयप्रकाश नारायण की “जीवनदान ” नाम की पुस्तिका अवश्य पढ़ें ।

भूमि-वितरण

किसी प्रदेश में जब भूमिदान-यज्ञ में काफी मात्रा में जमीन मिल जाती है, तब उसके बँटवारे का काम हाथ में लिया जाता है । आम तौर पर जिस प्रदेश में एक ही स्थान पर ज्यादा जमीनें मिली हों, वहाँ बँटवारा पहले किया जाता है । आज तक भूदान-आन्दोलन में प्राप्ति की ओर अधिक ध्यान दिया गया था । अब बँटवारे की ओर भी उतना ही ध्यान दिया जायगा । जिस गाँव में जमीन बाँटनी होती है वहाँ पर वितरण से एक सप्ताह पहले वितरण की सूचना दी जाती है । वितरण से पहले प्राप्त जमीनें भी देख ली जाती हैं । वितरण के काम में भूदान समिति-सदस्य का काम मुख्यतः सारी विधि में साक्षी रहने का ही होता है । निर्णय लेने का सारा काम ग्रामजनों पर ही छोड़ा जाता है । पहले यह तय किया जाता है कि एक परिवार के लिए उस गाँव की कम से कम कितनी जमीन देना आवश्यक समझा जाय । उसके बाद भूमि-वितरण के नियमों के अनुसार (जो आगे दिये गये हैं) भूमिहीन लोग छाँटे जाते हैं । जमीन जहाँ कम हो और भूमिहीन अधिक हों वहाँ जमीन किसे दी जाय, इसका निर्णय भूमिहीन

लोग करते हैं। कभी निर्णय न किया जा सकता हो, तो चिट्ठी डालकर तय किया जाता है। भूमि-वितरण के समय सेवकों को अनेक पावनकारी प्रसंगों के अनुभव होते हैं। जमीन कम हो और भूमिहीन अधिक हों तो उनको देखकर लोग नयी जमीनें दान में देते हैं। भूमिहीन लोग स्वयंप्रेरणा से दूसरे भूमिहीन के लिए अपनी माँग वापस ले लेते हैं। प्रेम की मानों होड़-सी चलती है।

जो जमीनें दी जाती हैं उसे नया किसान बेच नहीं सकता, उसे रेहन नहीं रख सकता, उस पर किसी प्रकार का ऋण नहीं कर सकता और न उसे पड़ती रहने दे सकता है।

भूमि-वितरण के नियम नीचे लिखे अनुसार हैं :

(१) जिस गाँव में जमीन वितरण करना हो उस गाँव के लिए निश्चित तारीख मुकर्रर कर उस तारीख की सूचना एक सप्ताह पूर्व ही उस गाँव के लोगों को डुग्गी के जरिये और छपे परचे के जरिये कर देनी चाहिए। घर-घर इसकी खबर पहुँचे, ऐसा प्रबन्ध अवश्य हो।

(२) वितरण-दिवस के एक दिन पहले भी उस गाँव में सूचना कर देनी चाहिए। वितरण के कार्यक्रम की सूचना जिला-धीश तथा संबंधित अधिकारियों को भी दे दी जाय, ताकि उनके कर्मचारी वितरण के समय उपस्थित रह सकें।

(३) वितरण करनेवाले जमीन की पूरी जानकारी गाँव-सभा के सभापति तथा पटवारी के जरिये पहले ही प्राप्त कर लें। उस जमीन की स्थिति, किस्म और हैसियत भी मौके पर जाकर देख लें।

(४) भूमिहीन कौन-कौन लोग हैं, इसका पता सारे गाँव की सार्वजनिक सभा बुलाकर किया जाय ।

(५) भूमि-वितरण भी गाँववालों की सार्वजनिक सभा में हो, तहसीलदार भी उपस्थित रहे । तहसीलदार की जगह जिलाधीश किसी और अधिकारी को मुकर्रर कर सकते हैं । उनके अलावा पटवारी और कानूनगो का रहना उपयोगी है ।

(६) भूमि-वितरण, जहाँ तक हो, सर्वसम्मति से किया जाय । मतभेद की सूरत में किन बेजमीनों को जमीन मिले, इसका फैसला भी भूमिहीन लोग ही सर्वसम्मति से करें । अगर भूमिहीनों का एकमत न हो और हमारे प्रतिनिधि को अन्तिम निर्णय देना ही पड़े, तो वहाँ गोटी या पटका डालकर वह निर्णय करे ।

(७) वितरण के काम में गाँव के सज्जनों और महाजनों का सहयोग लिया जाय, ताकि भविष्य में नयी जमीन प्राप्त करने तथा बेजमीनों को अन्य सुविधाएँ दिलाने में उनका पूरा सहयोग हो सके ।

(८) जहाँ तक हो सके प्राप्त जमीन का एक-तिहाई हिस्सा हरिजनों में तक्सीम किया जाय ।

(९) जमीन, जहाँ तक हो सके, उसी गाँव के भूमिहीनों को देनी है । अगर दान में बड़े-बड़े चक मिले हों और गाँव के भूमिहीनों को देकर भी भूमि बचती हो तो आसपास के गाँवों के भूमिहीनों को वह दी जा सकती है । बड़े-बड़े चकों में बाहर के लोगों को बसाया जा सकता है ।

(१०) नये लोगों को लाकर बसाना हो या बड़ी बस्ती

बसानी हो, तो सांमिति* उसके लिए विशेष नियम बनाये। इसमें श्री पुरुषोत्तमदास टंडन की योजना, जो संक्षेप में यह है कि हर घर के इर्दगिर्द कुछ ऐसी जमीन रहे, जिसमें साग-सब्जी, फल-फूल पैदा कर सकें, घर के मल-मूत्र के लिए गढ़े आदि बना सकें, विशेष रूप से कार्यान्वित की जाय।

(११) साधारणतया खेती के लिए जमीन ऐसे भूमिहीन को दी जाय जिसके पास कोई दूसरा धंधा न हो, जो जमीन की काश्त स्वयं कर सकता हो और खेती करना चाहता हो। नये गाँव बसाने को जो भूमि दी जायगी, उसमें इस बात का ध्यान विशेष रूप से रखा जाय कि गाँव सुन्दर और स्वावलम्बी बने। ऐसी हालत में आवश्यकतानुसार नियमों में परिवर्तन किया जा सकेगा।

(१२) पाँच मनुष्य के परिवार के लिए अक्सर एक एकड़ तरी या ढाई से पाँच एकड़ तक खुशक जमीन दी जाय। लेकिन जमीन की किस्म देखकर, विशेष परिस्थिति में, पाँच एकड़ से ज्यादा भी जमीन दी जा सकती है।

(१३) दान में मिले हुए छोटे टुकड़ों को अदल-बदलकर यथा संभव एक चक बनाने का प्रयत्न किया जाय। छोटे टुकड़े होने के कारण जहाँ भूमिहीनों को देना सम्भव न हो, या जहाँ भूमिहीन हों ही नहीं, वहाँ प्रथम अत्यन्त अल्प जमीनवालों को ये टुकड़े दिये जा सकते हैं। यदि यह भी संभव न हो, तो उन टुकड़ों का उपयोग ग्रामोपयोगी सार्वजनिक कार्य (जैसे कम्पोस्ट के गढ़े, शौचालय आदि) में किया जा सकता है।

(१४) जिन्हें जमीन दी गयी है, वे दस साल तक उसे बेच नहीं सकेंगे।

(१५) जमीन में, अगर देते समय से ही काश्त हो सकती हो, तो जमीन लेनेवाले को नियमानुसार उसी समय से सरकारी लगान देना होगा ।

(१६) अगर दान में मिली जमीन की जोत न हो सके और साधारणतया दो साल तक जमीन बिना काश्त की रह जाये, तो सरकार को अधिकार होगा कि वह इस जमीन को दूसरे बेजमीन किसान को नियमों के अनुसार बाँट दे ।

(१७) जहाँ जमीन तकसीम की जायगी, वहाँ के शेष बेजमीनों के लिए और नयी जमीन उस वक्त और आगे भी हासिल करने का प्रयत्न किया जाय ।

(१८) जो जमीन पहले न जोती गयी हो, जैसे नव-आबाद जमीन, पड़ती या ऊसर जमीन, उसको आबाद करने के लिए तीन साल तक का समय होगा ।

भूदान-कानून

भूमि-वितरण के काम में सुविधा देने की दृष्टि से कई राज्यों में भूमिदान-यज्ञ कानून भी बने हैं । इन कानूनों में विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार थोड़ा-बहुत अन्तर है । लेकिन आम तौर से इन कानूनों के जरिये नये भूमिहीनों को नियंत्रित मालिकी हक की मान्यता दी जाती है । जमीन के हस्तान्तर में लगनेवाले सरकारी टिकट आदि के खर्च माफ किये जाते हैं । इसकी व्यवस्था करने के लिए भूदान-कानून में किसी बोर्ड की व्यवस्था होती है, जिसके सदस्य विनोबा नामजद करते हैं । आज तक हैदराबाद, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, विंध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा

और सौराष्ट्र में भूदान-कानून बन चुके हैं। अन्य राज्य ऐसे कानून बनाने की तैयारी कर रहे हैं।

देश में भूदान आन्दोलन

क्रांति अपने साथ ही कार्यकर्ताओं को खींच लाती है। जमाने की मांग जब पूरी होने लगती है, तब उसकी प्रतिध्वनि कोने-कोने में सुनाई देने लगती है। जिस विनोबा को आज से चार साल पहले इने-गिने लोग ही जानते थे, उसके साथ पदयात्रा करने के लिए आज देश-विदेशों से लोग आते हैं। हमारे देश के दुर्भाग्य से अभी उतने लोग इसमें कूद नहीं पड़े हैं, जितने कूदने चाहिए थे, लेकिन फिर भी प्रायः सारे राजनीतिक पक्षों ने प्रस्तावों के द्वारा भूदान-आन्दोलन का समर्थन किया है। जो लोग इस आन्दोलन में आये हैं उन्होंने तो जी-जान से इसे सफल बनाने की कोशिश की है। देश का कोई भी सूबा ऐसा नहीं है जहाँ भूदान-यज्ञ की हलचल न हो। आइये, देश के भूदान-आन्दोलन का सरसरी निगाह से अवलोकन कर लें।

भूदान-यज्ञ का तंत्र संभालने की जिम्मेवारी अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ ने उठा ली है। उसके मार्गदर्शन में देश भर की प्रान्तीय भूदान-समितियाँ काम कर रही हैं, जिनकी नियुक्ति विनोबा ने स्थानीय कार्यकर्ताओं की सलाह से की है। इन भूदान-समितियों में से अधिकांश का खर्च सर्व-सेवा-संघ को गांधी स्मारक निधि से मिलता है। विनोबा के अतिरिक्त जिन लोगों ने अखिल भारतीय क्षेत्र में भूदान-यज्ञ का काम किया है उनमें से कुछ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री शंकरराव देव ने सर्व-

सेवा-संघ के मंत्री पद के दो वर्ष (१९५२ से '५४) तो अपनी पूरी ताकत भूमिदान-यज्ञ में लगा दी। देश के अधिकांश प्रान्तों का उन्होंने दौरा किया। अक्सर वे प्रान्त का दौरा पैदल ही करते थे। इनके प्रवास से कई प्रान्तों को, विशेषकर दक्षिण भारत के लोगों को, गांधो-विचार की नयी प्रेरणा मिली। श्री जयप्रकाश नारायण भूदान-आन्दोलन में कुछ देर से आये, लेकिन वे जहाँ गये उन्होंने नयी क्रान्ति का शंख फूँक दिया। राजनीति को छोड़कर सर्वोदय के काम के लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पण किया। यह घटना तो देश के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान लेगी।

देश के कोने-कोने में फैले हुए कार्यकर्ताओं को सर्वोदय-विचार की सैद्धान्तिक भूमिका समझाने का काम दादा धर्माधिकारी के दौरों ने किया। और विमला ताई ठकार की यात्राओं ने देश के कई प्रान्तों में और प्रमुख शहरों में नयी जान-सो ला दी। श्री श्रीकृष्णदास जाजू के दौरों ने यह सिद्ध किया कि भूदान-यज्ञ में बूढ़ों को भी जवान करने की कैसी संजीवनी-शक्ति है।

लेकिन इस पुस्तिका की मर्यादा में रहकर हम यहाँ उन सब प्रमुख व्यक्तियों के नाम का उल्लेख भी नहीं कर सकते, जो अपनी पूरी शक्ति इस काम में लगा रहे हैं। इन सबने अपने-अपने क्षेत्रों में भूदान यज्ञ का रंग लगा दिया है और साथ ही साथ भूदान के काम के जरिये अपनी शक्ति भी बढ़ा ली है।

यह बताने की जरूरत नहीं कि इस काम में सर्व-सेवा-संघ के अध्यक्ष श्री धीरेन्द्र मजूमदार तथा मंत्री श्री अण्णा सहस्रबुद्धे तथा वल्लभ स्वामी कार्यकर्ताओं के लिए अखंड प्रेरणा के स्थान रहे हैं।

भूदान आन्दोलन की जड़ें कम-अधिक परिमाण में हर प्रान्त

में जम चुकी हैं। एक भी प्रान्त ऐसा नहीं है, सिवा कश्मीर के, जिसने कुछ-न-कुछ भूमिदान या संपत्ति-दान न किया हो।

विनोबा ने सर्वप्रथम तेलंगाना में भूमि यज्ञ शुरू किया था। हैदराबाद की सीमा के पास मंचरियाल में पहला सम्मेलन हुआ एवं एक लाख एकड़ का संकल्प सबने मिलकर किया। आज वह संकल्प तो पूरा कर ही लिया गया है, और उसके बाद भी वहाँ के प्रमुख नेता और कार्यकर्ता भी इसमें तेजी से काम कर रहे हैं। हैदराबाद के तीन भाग हैं—मराठवाडा, कर्णाटक, तेलंगाना। तीनों में आज काम चल रहा है और साथ ही वितरण भी हो रहा है। तेलंगाना के पोचमपल्ली गाँव में जिनको जमीनें बाँटी गयीं; उनकी हालत अब बहुत अच्छी है। उन्हें साधन भी मुहैया करा दिये गये हैं। यहाँ श्री केशवराव, श्री स्वामी रामानन्द तीर्थ आदि इस काम में खूब जुट गये हैं।

विनोबा बाद में मध्य प्रदेश, राजस्थान, मध्य भारत और विंध्य प्रदेश में घूमते हुए देहली पहुँचे। इन सभी प्रान्तों में आज भूदान का काम चल रहा है। देहली राज्य में संपत्तिदान का काम जोर पकड़ रहा है। राजस्थान ने तो भूमि प्राप्ति का अपना कोटा भी पूरा कर लिया है। मध्य प्रदेश में तरुण संघटकों का दल अच्छी तरह काम कर रहा है। इन प्रान्तों में भूमिदान के साथ-साथ वितरण का कार्य भी तेजी से चल रहा है और कहीं-कहीं निर्माण का भी। सर्व श्री दादाभाई नाइक, गोकुल भाई भट्ट, सिद्धराज जी ढड्डा, खोड़ेजी, चतुर्भुज पाठक आदि अनुभवी कार्यकर्ता इन प्रान्तों में जुटे हुए हैं।

दिल्ली के बाद विनोबा उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में

घूमे। हिमाचल प्रदेश में एक पूरी जागीर विनोबाजी को श्री धर्मदेवजी शास्त्री के प्रयत्नों से मिली और उत्तर प्रदेश में एक पूरा का पूरा गाँव ही श्री दीवान शत्रुघ्न सिंह जी के प्रयत्नों से मिला। उत्तर प्रदेश ने अपना पाँच लाख का कोटा पूरा किया और अब वह वितरण में लगा है। उत्तर प्रदेश के हर जिले में विनोबा घूमे, जगह-जगह भूदान संदेश सुनाया और लाखों एकड़ जमीन प्राप्त की। उत्तर प्रदेश के राजनीतिक नेताओं ने भी पूरा योग दिया। यहाँ की प्रसिद्ध रचनात्मक संस्था, गांधी आश्रम ने पूरे प्रान्त में जगह-जगह व्यवस्था में, प्राप्ति में मदद की और अपने कार्यकर्ता इसमें दिये। समाजवादी पक्ष ने भी मदद की। बाबा राघवदास और अक्षयकुमारजी करण जैसे की तपश्चर्या इस प्रान्त में चमक रही है। इस प्रान्त में साहित्यिकों ने भी काफी योग दिया। विनोबा के यहाँ से चलते समय प्रांत के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री पंतजी ने कहा था, “इस प्रांत की आबोहवा ही आपने बदल दी है।”

उत्तर प्रदेश से चलकर विनोबा बिहार में एकाग्र प्रयोग के लिए पहुँचे। बिहार ने विनोबा का हार्दिक स्वागत किया और रचनात्मक कार्यकर्ता इसमें जुट गये। बिहार में आज करीब २२ लाख एकड़ जमीन मिली है, सैकड़ों का संपत्तिदान मिला है, हजारों के करीब जीवनदान मिले हैं, कुछ गाँव पूरे-के-पूरे मिले हैं और अब वितरण भी हो रहा है। बिहार की भूमि-समस्या हल करने की चाभी लक्ष्मी बाबू जैसे सर्व संग परित्यागी के हाथों में देकर विनोबा ने बंगाल में प्रवेश किया।

बंगाल में वैसे भूमि प्राप्ति तो कम हुई, पर विचार बीज

अच्छी तरह बोया गया। वहाँ के निष्ठावान् सेवक लगन के साथ काम में लगे और किसी प्रकार से निरुत्साही न होकर सरकारी सहानुभूति के अभाव में भी उन्होंने अच्छी तरह काम शुरू किया है। चारू बाबू जैसों ने ३-३ हजार मील की यात्रा करके विचार-बीज बोया है। अब विनोबा उत्कल में घूम रहे हैं। उत्कल में नेता और कार्यकर्ता सबके सब जुट गये हैं। यहाँ भूमि-क्रान्ति का अलख विनोबा ने जगाया है। एक तीन सौ के करीब कार्यकर्ता पूरा समय देकर काम कर रहे हैं करीब तीन सौ गाँव तो मिल चुके हैं और दिन-पर-दिन मिलते ही जा रहे हैं। इसके पीछे कोरापुट के मूकसेवक श्री विश्वनाथ पटनायक की तपस्या है। भूमिदान के इतिहास में उत्कल क्रान्ति करके रहेगा, ऐसे आसार नजर आ रहे हैं। विनोबा ने कहा ही है कि यह वही वीर प्रदेश है, जिसने चंड-अशोक को धर्म-अशोक बना दिया था। प्रांत के तपे हुए नेता श्री गोप बाबू, श्री रमादेवी, श्री आचार्य हरिहरदास, श्री मालती देवी चौधरी अदि जी-जान से इस काम में मदद कर रहे हैं। शेष प्रांतों में से त्रावणकोरकोचीन प्रांत और गुजरात प्रांत गहरे काम की दृष्टि से काफी आगे बढ़ चुके हैं। दोनों जगह तरुण कार्यकर्ताओं का जो संघ है, वह अपने ढंग का अनोखा संघ है और पूरे जोर से प्रांतों में क्रान्ति का अलख जगा रहा है। श्री टामस चेरियन और राजम्मा बहन उधर त्रावणकोर-कोचीन में हैं। गुजरात का नाम तो रविशंकर महाराज जैसा उजागर कर रहे हैं, उसका सानी किसी प्रांत में नहीं है। प्रेममूर्ति महाराज इस वृद्धावस्था में जो कुछ पैदल घूम-घूम कर काम कर रहे हैं, उसके फल गुजरातवासियों को मिले बिना रह नहीं सकते।

पंजाब में भी भूदान का काम लाला अचितराम काफी लगन से कर रहे हैं। और बहन सत्यबाला भी देश की उन तरुणियों में से हैं जिनका कार्य विशेष उल्लेखनीय है। उनकी अपनी पदयात्राओं द्वारा विचार-बीज बोये जा रहे हैं। काम भले ही कम हुआ हो, क्रांति का अलख जगाने में पंजाब पीछे नहीं रह सकता, इसका हमें यकीन है।

महाराष्ट्र के बारे में इतना ही कहना काफी होगा कि जहाँ अप्पा साहब पटवर्धन जैसे अनन्य सेवक पड़े हैं, जहाँ शंकररावजी की तपस्या परिपक्व हुई है, जहाँ साने गुरुजी की भावना वातावरण में भरी हुई है, ऐसे प्रांत में विचार-प्रसार के द्वारा भूमि-क्रांति गहराई से जड़ पकड़ रही है। यह सही है कि भूमि-प्राप्ति अभी यहाँ कम हुई है। परंतु महाराष्ट्र के अनन्य सेवकों ने पीछे न रहने का संकल्प कर लिया है। असम और आंध्र-प्रांत में वैसे बहुत काम नहीं हुआ है। परंतु निष्ठावान् कार्यकर्ता अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार काम किये जा रहे हैं। कर्नाटक प्रांत में तरुण कार्यकर्ता बड़े उत्साह से काम कर रहे हैं। पद-यात्राएं निकाल रहे हैं और वितरण भी साथ-साथ कर रहे हैं। मैसूर, कर्नाटक का ही एक भाग है, वहाँ भी अच्छा काम हो रहा है।

तमिलनाडु के उत्साही जनसेवक श्री जगन्नाथन् ने एकाकी हालत में वहाँ काम शुरू किया और अब प्रांत के दो ज्येष्ठ नेता, श्री राजाजी के आशीर्वादपूर्ण प्रोत्साहन से एवं श्री कामराज नादर के सक्रिय सहयोग से तेजी से काम बढ़ाते जा रहे हैं। जिस निष्ठा और लगन से इस प्रांत में काम हो रहा है, कई प्रांतों के लिए वह एक मिसाल बन सकती है।

सौराष्ट्र यों तो गुजरात ही का अंग माना जायगा, लेकिन राजनैतिक दृष्टि से उसे अलग प्रांत माना है। बापू की पावन भूमि सौराष्ट्र और कच्छ ने अपना पहला लक्ष्यांक पूरा कर लिया है। आज तक भिन्न-भिन्न प्रांतों में मिली हुई जमीन के आँकड़े परिशिष्ट में दिये गये हैं।

यह स्वाभाविक है कि जहाँ-जहाँ विनोबा की पदयात्रा हुई है, वहाँ जमीन अधिक मिली, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि जहाँ विनोबा नहीं गये, वहाँ काम नहीं हुआ है। उत्कल, केरल, गुजरात आदि प्रांतों के काम से यह साफ दीखता है कि वहाँ जमीनें भले ही अपेक्षाकृत कम मिली हों, किन्तु विचार की नींव गहरी पैठ गई है।

: ८ :

सबको निमंत्रण

भारतमाता की आज बुंलाहट है, हम सबको अपने ३६ कोटि भाई-बहनों की सेवा के लिए । भूदान-यज्ञ एक ऐसा आन्दोलन है जिसमें हर कोई अपना हाथ बंटा सकता है । यह एक ऐसी क्रान्ति है जिसमें अमीरी-गरीबी खतम करने के लिए अमीरों का सहयोग और गरीबों का पुरुषार्थ चाहिए । यह एक ऐसा आन्दोलन है जिसमें कूद पड़ने की प्रेरणा जो कोई भी विचारक है और जो कोई भी भावनावान है, उसे होनी चाहिए । भूदान-यज्ञ का आज हम सबको निमंत्रण है, इसमें जुट जाने का ।

भूमिवानों से

देश के कई प्रदेशों में आज ऐसी परिस्थिति आ गयी है कि यह आन्दोलन अब भूमिवानों का आन्दोलन बन जाना चाहिए । याने, भूमिवान लोग स्वयं अपना हिस्सा तो दें ही और इसके अलावा दूसरों से दिलाने में भी वे मदद करें । भूमिवानों को यह समझ लेना चाहिए कि यह आन्दोलन उनके हित की चिन्ता करता है । जमाने की माँग को तो हममें से बहुतेरे समझ गये हैं, लेकिन फिर भी अक्सर हमसे जमीन दी नहीं जाती । हमें एक चीज समझ लेनी चाहिए कि इस आन्दोलन से मालिकी तो खत्म

होती है, लेकिन इज्जत से बढ़कर बड़ी कौन सी चीज है जिसकी हम दुनिया में कदर कर सकते हैं? क्या हमारे कोटि-कोटि भूखे-नंगे भाइयों की आवाज हमारे कानों तक नहीं पहुँचेगी? एक बार जरा विश्वासपूर्वक देखिये तो सही कि त्याग में क्या लुत्फ है। शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र जैसेों का खून आपकी रगों में बह रहा है। वह आपको इस आन्दोलन में कूदे बिना चैन नहीं लेने देगा। आप आइये बिहार, उत्तर प्रदेश तथा अन्य कई प्रदेशों के भूमिवानों की तरह भूदान की सेना में भरती हो जाइये। विनोबा तो कई दफा कहते हैं कि मैं उदार सज्जनों की सेना खड़ी कर रहा हूँ। मेरे यज्ञ के कारण दो तरह के लोग अलग-अलग दीख पड़ेंगे। एक उदार और दूसरे कंजूस। आप क्या सज्जनों की सेना में भरती होना नहीं चाहेंगे?

आप इस आन्दोलन में कई प्रकार से मदद कर सकते हैं:

- (अ) अपनी जमीन का योग्य हिस्सा दान दें।
- (आ) अपने मित्र, रिश्तेदार या संबंधी से जमीन दिल-वाइये।
- (इ) खुद यात्रा करें या अन्य भूदान-सेवकों की यात्रा में शामिल हों।
- (ई) रोज एक आदमी को इतना समझा दीजिये कि आपने अपनी जमीन भूदान-यज्ञ में क्यों दी।
- (उ) भूमि-वितरण के समय आपकी जमीन जिसे दी जाय उसे साधन-दान दें या दिलायें।
- (ऊ) जिसे जमीन दी गयी हो उसे कृषि के बारे में योग्य

सलाह देते रहें। उसकी खेती न बिगड़े, यह आपका जिम्मा होना चाहिए।

जमीनवालों को संजीवन देने के आरोप का उत्तर देते हुए विनोबा ने एक बार कहा था कि मैं जमीनवालों को संजीवन दे रहा हूँ, न कि उनकी जमीन की मालकियत का। वास्तव में विधायक क्रांति का यही लक्ष्य होता है। रोग तो नेस्तनाबूद हो जाय पर रोगी बच जाय। विनोबा ने जमीनवालों से बार-बार कहा है कि अगर उन्हें इज्जत-पूर्वक जीवन जीना है तो वे इस आन्दोलन को अपना लें। कल की क्रांति और कानून की क्रांति, दोनों में जमीनवालों की जमीनें छीनी जायँ या न छीनी जायँ, जमीनवालों की तो बेइज्जती ही होती और फिर या तो वे प्रतिक्रियावादी बनकर बदला लेने का मौका ढूँढ़ते हैं या खतम हो जाते हैं। जनतंत्र में जमीनवालों की बात आखिर अधिक चलनेवाली नहीं है, परन्तु भूमिदान-यज्ञ उनसे जमीनें लेकर भी उन्हें बाइज्जत रखना चाहता है। उनके हृदय को, उनके मस्तिष्क को परिवर्तित करके वह भूदान लेता है, जिसमें उसकी निजी मालकियत तो छूटती है पर निजी इज्जत बढ़ती है, प्रतिष्ठा कायम रहती है। विधायक क्रांति का यह परिणाम अन्य किसी मार्ग से सम्भव नहीं है। इसलिए इस आन्दोलन को अब भूमिदान लोग पूरी तरह उठा लें तो उसमें देश का और उनका दोनों का लाभ है। आने-वाला जमाना निजी मालकियत के ही खिलाफ रहेगा। क्रांति की छाया जगत् पर तेजी से पड़ती जा रही है। ऐसी हालत में निजी स्वामित्व छोड़ने का कौन सा मार्ग श्रेयस्कर है, यह देखना जरूरी है और भूदान-यज्ञ भू-स्वामियों को इसके लिए आवाहन करता है

कि वे इसे परखें और ईसमें कूद पड़ें। अपनी शक्ति, अकल और अपनी जमीन वे इसमें अर्पित कर दें और फिर नेतृत्व भी लें। व्यक्ति को हल्का या जलील बनाकर नहीं, उसे इज्जतदार बनाकर, उसे नेतृत्व देकर जो क्रांति उससे प्रेम से जमीन लेना चाहती है, वह कानून के बनिस्बत हर हालत में श्रेष्ठ क्रांति है। इसलिए युग-प्रवाह को पहचानकर छोटे-बड़े सब जमीनवाले, निजी मालकियत स्वेच्छा से छुड़ानेवाले इस आन्दोलन का नेतृत्व लें, ऐसी उनसे विनोबा की हार्दिक अपील है।

श्रमिकों से

इस क्रांति में आपको भी बड़ा हिस्सा लेना है। केवल निष्क्रिय प्रेक्षक बनकर बैठे नहीं रहना है। विनोबा जब जमीन माँगते हैं तब भूमिवानों से कहते हैं कि मैं भूमिहीनों के हक की माँग कर रहा हूँ। हमें अपने सात्विक आचरण से अपना यह हक व्यक्त करना होगा, तथा इसके लिए लायक बनना पड़ेगा। श्रमिकों के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम है :—

(अ) अपने बाजुओं के जोर से दूसरों को मदद दें अर्थात् श्रमदान करें। भूमिहीनों को जो भूमि दी जाय उसे तोड़ने या खेती के लिए तैयार करने में मदद करें। उनके लिए कुएँ खोदने में मदद करें।

(आ) अपना जीवन शुद्ध करने के लिये व्यसन त्याग की प्रतिज्ञा लें।

(इ) भूमिदान-साहित्य पढ़ें और अपने अनपढ़ भाई-बहनों को नियमित रूप से पढ़ सुनावें।

(ई) गाँव-गाँव भूमिहीनों के घर-घर में यह संवाद पहुँचा दें कि अब भूमि उसीकी होकर रहेगी जो उसे जोतेगा।

(उ) अपने गाँव के भूमिवानों के पास जाकर नम्रतापूर्वक प्रेम से पूछें कि आपने भूदान-यज्ञ में कितनी जमीन दी है। उन्हें यह भी कहें कि हमें विश्वास है कि भगवान् आपको जमीन देने की प्रेरणा देगा।

(ऊ) भूदान के गाने सीख लें। मौका पाने पर उन्हें गावें। अपने नृत्य आदि कार्यक्रमों में भी भूदान-गीत शामिल कर सकते हैं।

(ए) भूदान की जन्मतिथि (१८ अप्रैल), भूमि-जयन्ती (११ सितम्बर) आदि नये उत्सव मनावें।

(ऐ) गाँव के भूमिवानों की निन्दा न करने का निश्चय करें। मजदूरी के काम में तनिक भी आलस्य न करें।

(ओ) आपमें से किसीको यदि बेदखल किया जाता हो, तो वह अपनी जमीन पर डटा रहे।

(औ) जहाँ भूमि-वितरण हो वहाँ अपने में से योग्य से योग्य भूमिहीनों को स्वयम् एकमत से चुनें। 'पहले उसे, बाद में हमें' का सूत्र न भूलें।

विद्यार्थियों से

दुनिया भर में शायद ही कोई देश ऐसा होगा जिसमें शान्ति के आन्दोलनों में युवकों का बड़ा हिस्सा न रहा हो। हमारे देश के स्वातंत्र्य संग्राम में भी विद्यार्थियों ने उत्साह से भाग लिया है। किशोरों ने हँसते-हँसते गोलियाँ भेली हैं, लाठियाँ खायी हैं, सजाएँ

भुगती हैं। लेकिन क्रांति के अब तक के सारे आन्दोलनों में और इस आन्दोलन में एक अन्तर है। अब तक के सारे आन्दोलन मारने या मरने के आन्दोलन थे। यह आन्दोलन जीने और जिलाने का है। इसलिए इसमें जो छात्र हिस्सा लेना चाहेंगे, उन्हें केवल लड़ाई और प्रतिकार के कार्यक्रम नहीं मिलेंगे, उन्हें गहराई में जाना होगा। आज तक हजारों विद्यार्थियों ने इस आन्दोलन में जो हिस्सा लिया है, वह सभी भूदान-सेवकों को प्रेरणा देने वाला किस्सा बन सकता है। बिहार का वह दस साल का लड़का निकल पड़ा भूमि माँगने। पहले उसने अपने पिताजी के पास जाकर ज़िद्द पकड़ी कि आप छठा हिस्सा दीजिये, तब दूसरों से माँगूंगा। ऐसे पुत्र के पिता भला ऐसी माँग कैसे ठुकरा सकते थे? वह बच्चा कुछ ही दिनों में सैकड़ों एकड़ ज़मीन के दान-पत्र ले आया था। नन्हें-सी संघमित्रा ने न सिर्फ अपने, लेकिन अपनी माँ और नानी के भी सोने के अलंकार इस यज्ञ में दिलवा दिये और इससे आगे खुद सोने के गहने न पहनने का संकल्प किया। उसे लिखना-पढ़ना नहीं आता था, लेकिन भूदान-साहित्य बेचते-बेचते उसने पैसे का हिसाब करना सीख लिया। गुजरात का वह किशोर हर सप्ताह एक भूमिवान के पास अदब से जाता था। पहले सप्ताह उसने सिर्फ गाली सुनी। दूसरे सप्ताह वह अपनी पत्रिका पढ़ने के लिए छोड़ आया। तीसरे सप्ताह उसने एक आने की पुस्तिका बेची। होते-होते उस भूमिवान ने २५ बीघे जमीन दी। इस आन्दोलन से बहुतेरे छात्रों के जीवन पर भी असर पड़ा। जब नन्हें-नन्हें वानरों में समुद्र लाँघने की ताकत आयी थी तब क्रांति हुई थी, जब नन्हें-नन्हें गोपों ने पर्वत उठाया तब क्रांति हुई

थी, जब वानर-सेना ने नमक पकाया था तब क्रांति हुई थी। जब नन्हें बालक ऐसे काम करने लगते हैं कि जो आम तौर पर बड़े भी नहीं कर सकते तब क्रांति होती है। आज छोटे-छोटे विद्यार्थी भी विचार-प्रवर्तन का काम कर रहे हैं, इसलिए आज क्रांति हो कर ही रहेगी।

विद्यार्थियों के लिए कार्यक्रम नीचे लिखा है :

(अ) स्वयं भूमिदान-साहित्य का अध्ययन करें।

(आ) भूदान-साहित्य बेचें तथा भूदान-समर्थकों को ग्राहक बनायें।

(इ) अपने जीवन में श्रमनिष्ठा लाने का ध्यान रखें। कपड़े धोना, बरतन साफ करना आदि बहुतेरे काम अपने हाथों से करने का आग्रह रखें।

(ई) बड़े विद्यार्थी १९५७ तक कालेज छोड़ कर इसी काम में पूर्ण रूप से जुट जायें।

(उ) अन्य लोग छुट्टियों में भूदान-यात्रा में शामिल हों, जहाँ वे भूदान-गीत गाना, भूमिहीनों की फेहरिस्त बनाना आदि काम कर सकते हैं।

(ऊ) भूमिदान-कला-पथक बना कर गाँव-गाँव में प्रचार करें।

(ए) सर्वोदय-विचार-मंडलों की स्थापना कर सर्वोदय-विचार का अध्ययन करें।

(ऐ) भूदान से संबंध रखने वाले अन्य कार्यक्रमों में योग दें। जैसे—स्वच्छ भारत-आन्दोलन, खादी-ग्रामोद्योग आन्दोलन आदि।

बहनों से

हमारे देश के सांवधान न हमारी बहनों को भी नागरिकता के अधिकार दिये हैं। अब वे केवल पुरुषों की अर्धाङ्गना या वीर पुत्रों की माताएं नहीं रहें। वे स्वयम् भी यदि चाहें तो देश के निर्माण में उतना ही हिस्सा ले सकती हैं, जितना पुरुष लेते हैं। बापू ने भारतीय नारी को जागृत कर दिया है। विनोबा ने अब उसके लिए पराक्रम का क्षेत्र खोल दिया है। जो बहनें आज तक इस दुनिया में शामिल हुई हैं उनके काम को जब हम देखते हैं, तब दंग रह जाते हैं। हृदय परिवर्तन के प्रसंगों की उन्होंने मानों गंगा-सी बहाई है। समाज-जीवन में स्त्री का हिस्सा बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए हम मानते हैं कि यह क्रान्ति तभी सफल होगी जब बहनें इसमें बड़ी संख्या में जुट जायेंगी।

बहनों के लिए कार्यक्रम निम्न प्रकार है :

(अ) अपनी जमीन दें, या अपने कुटुम्बियों या संबंधियों से दिलावें।

(आ) अलंकार दान दें।

(इ) भूदान यात्राएं करें। विशेषतः घर-घर जा कर स्त्रियों को भूमिदान का विचार समझाने की कोशिश करें।

(ई) अपने घर में पुरुषों से कह दें कि हमारे लिए संग्रह मत बढ़ाइये, हमें कम खर्च का और श्रमनिष्ठ जीवन जीना है।

(उ) भूमिहीन-परिवारों में जा कर उनकी स्त्रियों से मिलें तथा स्नेह बढ़ावें।

(ऊ) भूदान-साहित्य का प्रचार करें। ऐसा पाया गया है कि इसमें वे अक्सर पुरुषों से अधिक सफल हो सकती हैं।

पक्षों और संस्थाओं से

भारत के राजनीतिक पक्ष के जो प्रमुख लोग हैं, उनमें कांग्रेस और समाजवादी पक्ष ऐसे हैं, जिन्हें बापू की कुछ-न-कुछ महान् परम्पराएं विरासत में मिली हैं। उन पक्षों के लोगों ने बापू के नेतृत्व में कंधे से कंधा लगा कर आजादी के संग्राम में भाग भी लिया है। ऐसी महान् परम्पराओं के बीच पले इन राजनीतिक पक्षों से सहायता पाने का पूरा हक भूदान-आन्दोलन को है। क्योंकि इस आन्दोलन के नेता और कार्यकर्ता भी बापू की रहनुमाई में उसी ध्येय-पथ पर चल रहे हैं। वे भी अभी-अभी तक इन राजनीतिक पक्षों के नेताओं के साथ एक ही क्षेत्र में काम करते थे। ऐसे एक परिवार-भावना से जुड़े हुए बन्धुजन भूदान-यज्ञ के निमित्त फिर आज एक मंच पर आ रहे हैं। बीच का सत्ता-प्राप्ति के बाद का एक समय ऐसा गुजरा, जब हम सब लोग, विशेषतः ये दोनों पक्ष, एक-दूसरे से इतने बिछुड़ गये थे और बीच में इतनी गहरी खाई पड़ चुकी थी कि कभी ये लोग साथ थे भी—ऐसा नहीं महसूस होता था। आज यह खाई पूरी तो नहीं पट सकी है, लेकिन स्वराज्य के बाद पहली बार भूदान के मंच पर सब एकत्र होने लगे। हर प्रदेश में अब ऐसे पावन दृश्य दिखायी देते हैं। लक्ष्य की समानता ने अब उन्हें और भी नजदीक ला दिया है। इन पक्षों ने जो क्रांतिकारी ध्येय समाजवादी रचना का प्रस्तुत किया है, उस ध्येय की ओर जनशक्ति द्वारा पहुँचने का अमली रास्ता भी भूदान-यज्ञ बता रहा है। इसलिए परस्पर मिलने, विचार-विनिमय करने और एक दूसरे के सहयोग की भूमिका तैयार होने लगी है।

बन्धुत्व और ध्येय-सिद्धि का सहपथ प्रस्तुत कर के भूदान-यज्ञ इन राजनीतिक पक्षों से प्रत्यक्ष सहयोग का हार्दिक आवाहन कर रहा है। कांग्रेस के महान् नेताओं ने इसमें हार्दिक सहानुभूति बतलायी है, सहयोग भी किया है। प्रजा-समाजवादी पक्ष के प्रमुख नेता तो इस काम को अपना ही काम मानते हैं।

अब इन पक्षों के अधिकाधिक सहयोग की आवश्यकता भूदान-यज्ञ-आन्दोलन महसूस कर रहा है। सन् '५७ का समय निकट आ रहा है। सारी शक्ति इसमें लगाने से इन पक्षों के आर्थिक क्रांति के ध्येय की पूर्ति भी हो सकती है। राजसत्ता द्वारा जो भी करना हो, उसमें किसी का प्रतिबन्ध नहीं है, परन्तु लोकशाही द्वारा जो करना है, उसके लिए यही एक ऐसा कार्यक्रम है जो स्वराज की लड़ाई के दिनों के समान कंधे से कंधा लगा कर कर सकते हैं। ऐसा करते-करते जो समान ध्येय वाले पक्ष हैं, वे अधिक निकट आवेंगे और पक्षातीत राजतंत्र की बुनियाद मजबूती से डाली जायगी।

आज हमारे देश की आन्तरिक स्थिति इतनी क्षोभजनक है कि यदि हम सब लोग कंधे से कंधा लगाकर देश-हित का कार्य नहीं करते हैं, तो भविष्य अंधकारमय दिखायी देता है। सब पक्ष इस दिशा में मार्ग खोज रहे हैं। परन्तु ध्येयमंत्र के साथ-साथ यदि हम शान्तिमय कार्यक्रम भी जनता को न दें, तो परिस्थिति में अधिक उलझनें पड़ सकती हैं। सत्ता द्वारा जो कार्यक्रम चल रहे हैं, वे जनशक्ति को विधायक क्रान्तिकारी रूप देने वाले नहीं हैं। भूदान-यज्ञ ने शुरू से यह दावा किया है और इसी आधार पर सबके सहयोग की माँग भी की है। विनोबा

ने इसीलिए काँग्रेस-अध्यक्ष से सत्याग्रही भाषा में मार्मिक अपील की है। हम आशा करते हैं कि य दोनों महान् पक्ष इस अपील का साथ देंगे।

उत्तर प्रदेश में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने भी भूदान में मदद की है। भूदान-आन्दोलन भारत की संस्कृति के पुनरुत्थान का आन्दोलन है। इससे भारतीय संस्कृति की अस्मिता अधिकाधिक चमकेगी। इस हालत में भारतीय संस्कृति की उद्घोषक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसी संस्था को भी इसमें भाग लेने का आवाहन यह आन्दोलन कर सकता है।

कम्युनिस्ट पार्टी गरीबों के लिए काम करने का दावा करती है। गरीबी यदि बिना किसीको कल्ल किये मिट सकती है तो क्या उसे कम्युनिस्ट भाई नहीं चाहेंगे? भूदान-आन्दोलन अहिंसक ढंग से गरीबी मिटाने का दावा करता है। इसलिए गरीबों का हित चाहनेवाले कम्युनिस्ट भाइयों को भी यह आन्दोलन आवाहन करता है।

पक्षों तथा संस्थाओं के लिये कार्यक्रम निम्नलिखित हैं :

अ. अपने हरएक सदस्य से षष्ठांश भूमि का संपत्ति की मांग करें।

आ. हरएक सदस्य के लिए कुछ न कुछ समय भूमि दान में देना अनिवार्य करें।

इ. इर्द गिर्द जो भूमिदान सेवक हों उन्हें पूरी सहायता देने की सूचना अपने सदस्यों को दें।

ई. साल में कम-से-कम अमुक समय भूदान के काम में लगाने का तय करें।

उ. अपने कार्य-प्रदर्श में भूमि प्राप्ति और वितरण की पूरी जिम्मेदारी उठा लें।

ऊ. निश्चित लक्ष्यांक तय कर उसे पूरा करने तक अपनी अधिकांश प्रवृत्तियाँ स्थगित कर दें।

ऋ. सन् '५७ तक अपनी संस्था को काम में लगा दें।

इन सारे राजनीतिक और सामाजिक पक्षों वाली संस्थाओं से सहयोग की अपील करते हुए भूदान-आन्दोलन यह माँग करता है कि वे इस आन्दोलन में कूदें, मदद करें। देश के हित में साथ दें, परन्तु पक्ष-दृष्टि रखकर नहीं। पक्ष-भावना से दूर रहकर ही वे इसमें भाग लें। क्योंकि गरीबों के हित के कार्य में, क्रान्ति के काम में जैसे जाति, वर्ण, धर्म नहीं देखा जाता वैसे ही पक्ष भी नहीं देखे जाते। गाँव में आग लगने पर जब सब लोग उसे बुझाने दौड़ते हैं, तो यह नहीं देखते कि हम अमुक पक्ष के बनकर आग बुझा रहे हैं। भूदान-यज्ञ देश में जो विधायक क्रान्ति लाना चाहता है, उसकी यही शर्त है कि सब बन्धुत्व में बंधकर इसमें भाग लें। भूदान-आन्दोलन सत्ताकांक्षी आन्दोलन नहीं है, अतः यह शर्त किसी पक्ष के लिए बाधक नहीं हो सकती। इसकी एक ही हार्दिक अपील है कि गरीबों के हित के काम में सब लोग पक्षभेद भूलकर पूर्ण सहयोग दें और जबतक लक्ष्य पूरा न हो, सहायता देते रहें। यह काम अब विनोबा का नहीं, सारे देश का है।

कार्यकर्ताओं से

किसी आन्दोलन को जीवित रखकर चलाने की शक्ति कार्यकर्ताओं में ही होती है। भूमि लेनेवाले और देनेवाले दोनों

तैयार हैं। पर कार्यकर्ता माँगने और बाँटने को तैयार नहीं, तो क्रान्ति फेल हो जायगी। कार्यकर्ता आन्दोलन की रीढ़ होता है। भूदान-आन्दोलन जब तक भूमि-प्राप्ति का आन्दोलन था, तब तक तो गनीमत थी, परन्तु जब वितरण और निर्माण का कार्य सिर पर आया है तब कार्यकर्ताओं की आवश्यकता भी तीव्र रूप से महसूस होने लगी है। जब तक प्राप्ति का काम था, कार्यकर्ताओं से एक वर्ष की माँग की गयी थी, फिर परंधाम आश्रम की संस्था को इस यज्ञ में अर्पित कर विनोबा ने रचनात्मक कार्य-कर्ताओं से ज्यादा वक्त की माँग की। कुछ ही दिनों बाद इस माँग को सर्व-सेवा संघ ने अपने ऊपर उठा लिया और सबका आवाहन किया। अन्त में बोधगया-सम्मेलन के अवसर पर श्री जयप्रकाश नारायण ने जीवनदान की प्रेरणा देकर पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ताओं का आवाहन किया। श्री जयप्रकाश नारायण की माँग पर श्रीयुत रविशंकर महाराज जैसे साधु-पुरुषों ने अपना जीवन-दान किया।

विनोबा ने तेलंगाना में कहा था—वामनावतार के तीन चरण हैं, जिसमें से एक भूदान-यज्ञ का है। दूसरा चरण सम्पत्ति-दान के रूप में शुरू हुआ और तीसरा चरण यह जीवनदान आरम्भ हुआ है। तीसरे चरण के रूप में “मैं सब को गरीबों की सेवा में लगानेवाला हूँ” ऐसी उनकी माँग थी जो जीवनदान के रूप में प्रकट हुई। बिहार में इस्लामपुर की सभा में विनोबा ने कहा : ‘भूदान-यज्ञ-आन्दोलन अब उस दशा पर पहुँच गया है जो अभिमन्यु की हुई थी। इस चक्रव्यूह को या तो तोड़ना है या खत्म हो जाना है।’ निःसन्देह अब तो कार्यकर्ताओं को इस

आन्दोलन में साल, छह मास के लिए नहीं आना है। साल-दो साल की अपील तो राजनीतिक पक्षों या विद्यार्थियों से है। इस काम में जीवन अर्पित कर देने की अपील तो वे कार्यकर्ताओं से ही कर रहे हैं, जो कि इसके आधार हैं। इसलिए वे अब इसे 'आन्दोलन' नहीं, 'आरोहण' कहते हैं।

जीवनदान नाम रहे या न रहे, इस काम में पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ताओं की जरूरत अब आ पड़ी है, यह स्पष्ट है। इसके लिए उन्होंने वानप्रस्थाश्रम की प्राचीन संस्था को भी पुनरुज्जीवित करने का सतत प्रयत्न किया और कर रहे हैं। यदि यह काम केवल भूमि-प्राप्ति और भूमि-वितरण का ही होता तो कोई बड़ी बात न थी, परन्तु सर्वोदय-समाज की रचनानुसार जगह-जगह जो रामराज के नमूने खड़े करने हैं, उनके लिए ही ऐसे कार्यकर्ताओं की जरूरत है, जो इसमें अपने को खपा दें।

इसलिए वे रचनात्मक कार्यकर्ताओं से, गांधी-सेवकों से विशेष अपेक्षा रखते हैं, क्योंकि गांधीजी की तालीम में तपे हुए महान् सेवक यदि इस काम को उठा लेते हैं तो आन्दोलन ऐसा प्राणवान् हो उठता है, जो गांधीजी के समय की याद दिला देगा। गांधीजी के मार्ग पर चलकर ही भूदान-यज्ञ अपने कदम आगे बढ़ा रहा है। ऐसी हालत में स्वभावतः रचनात्मक कार्यकर्ताओं से अपेक्षा की जाती है। सत्ता-जाल से दूर रहकर जो सैकड़ों गांधी-सेवक रचनात्मक काम में वर्षों से लगे हैं उनको अब यह आन्दोलन गांधीजी के नाम पर आवाहन कर रहा है। क्योंकि गांधीजी के सिद्धान्त आज युग की समस्या की कसौटी पर चढ़े

हुए हैं। अब राजनीतिक क्रान्ति के बाद आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति यदि हम गांधीजी के ही रास्ते पर चल कर जनशक्ति के द्वारा नहीं लाते हैं तो अहिंसा की विधायक शक्ति का आविष्कार हो नहीं सकता।

युग की आकांक्षा के साथ जब विधायक पुरुषार्थ जुटता है तब क्रान्ति होती है। इस क्रान्ति में युग की आकांक्षा साफ दीखती है। बाकी रहा, विधायक पुरुषार्थ। इसमें तीन कड़ियाँ चाहिए : योग्य नेतृत्व, कार्यकर्ता का सहयोग और जनता का साथ। भूदान-आरोहण में हमारे पास विनोबा का योग्य नेतृत्व है। लाखों किसानों ने अपने हृदय के टुकड़े जैसी जमीनें देकर यह भी सिद्ध कर दिया है कि इस क्रान्ति में जनता का साथ है। क्रान्ति की एक ही कड़ी बाकी है—कार्यकर्ता का सहयोग।

क्रान्ति की बाकी रही कड़ी को जोड़ने के लिए आप आइए ! फसल तैयार है, काटने वाले की कमी है। आइए, भूदान-यज्ञ की फसल काटने के लिए हम अपनी पूरी शक्ति लगा दें। . . .

भूदान प्राप्ति, वितरण, जीवनदानी तथा संपत्तिदान के

अखिल भारतीय आँकड़े

(अप्रैल, '५५ तक)

प्रदेश	एकड़ प्राप्त	दानपत्र संख्या	एकड़ वितरित	परिवार जीवनदानी		
				संख्या	संख्या	सम्पत्तिदान दाता रकम
बिहार	२३२६३१६	२८८८८४	१५६८५	६३७७	१०६६	३२४ २४८३४।।७
बंगाल	६४१६	४४४६	१०४७	८४८	२४	३५६ २४१६३।।७
पंजाब व पेप्सू	१२५१०	२६१०	३२५	६६	१२	२७७ ७३६६४।।।७
हैदराबाद	१०६८६८	४०१०	३२०१६	६८६२	१३	५ ४२६६६।।७
मैसूर	६३८७	२५५१	—	—	८	—
विन्ध्य प्रदेश	६१६८	१२०६	६५०	२५५	२६	७ ३५०
उत्तर प्रदेश	५३६४३४	१७६१७	६०४३६	२७८७०	१०२	५२ २७६८२।।।।
राजस्थान	३४५८१६	५७८१४	७७६२	१५११	४६	१८५ १६१३८।।७
उत्कल	१२८४६४	४०५८	६४५	१०५	११२	४ २१६३३।।७
मध्य प्रदेश	८५६६६	१७३६७	२७७२०	४००५	६१	३६५ १७६२४।।७

मध्य भारत	५१६८७	५०१४	३११	—	३२	५३	३०१२॥॥=)॥॥
सौराष्ट्र	४१०००	१५०००	१५००	—	६	—	—
गुजरात	३७५७८	८४२६	३२३५	१०११	१६	२७	७६८२)
तमिलनाड	३२४६७	५८६५	५३०	१६१	३७	११	३६७१)
आन्ध्र	२१४११	६६२	१६	३८	८	३	४१३)
केरल	२८११३	१२००	—	—	२४	१	१२०)
महाराष्ट्र	२८०००	४५००	१००१	—	१५	१०	४००५)
दिल्ली	६२४५	२४६	६०	२५	८	१६	१८२६५॥=)
कर्नाटक	२८०३	५३८	—	—	८	—	—
हिमाचल प्रदेश	२०२५	६६	—	—	३	—	—
असम	१६५०	—	—	—	६	—	—
बम्बई	१२३	६	—	—	४	८६	३७५६१=)
मलाया (विदेश)	—	—	—	—	—	१	६००)

३८२६८१० ४४२७२२ १६३२७५ ५२१३४ १६४६ १७८६ २६७१४६।=)

भूदान-यज्ञ का दानपत्र



पड़ाव

जिला

तारीख

(१ लगी = हाथ अंगुल, एक एकड़ = बीघा कट्टा घूर)

मैं/हम पिता का नाम

ग्राम परगना

पो० थाना सबरजिस्ट्री

सबडिवीजन जिला राज्य

का/के निवासी अपनी जमीन बीघा कट्टा घूर (एकड़ डिसमिल जिसकी तफसील और चौहद्दी नीचे दी गयी है :—

पूज्य विनोबाजी के भूदान-यज्ञ में दान देता हूँ/देते हैं। इस भूमि पर आइन्दा मेरा/हमारा या मेरे/हमारे खानदान का कोई हक या दावा नहीं रहेगा। यह जमीन गरीबों की भलाई के लिए विनोबाजी चाहे जिस तरह उपयोग में ला सकते हैं।

गवाह का हस्ताक्षर (पूरा नाम) और पता दाता का हस्ताक्षर (पूरा नाम)

१

२ ता०

तफसील जमीन

गांव सब रजिस्ट्री चौहद्दी ।

उत्तर

तौजी न० सबडिवीजन

थाना जिला दक्षिण

थाना नं० राज्य

पूर्व

परगना खाता नं०

पोस्ट खेसरा नं० पश्चिम

संपत्ति-दान-यज्ञ का दानपत्र

पू० विनोबाजी ने भारतीय परंपरा के अनुसार आर्थिक क्रांति की अहिंसक प्रक्रिया को संपूर्ण रूप देने की दृष्टि से लोगों से भूमि के अलावा अपनी संपत्ति की आय का छठा हिस्सा देते रहने की मांग की है। भूमि न होने के कारण जो लोग भूमिदान-यज्ञ में हिस्सा नहीं ले सकते, उनके लिए भी अब इस पवित्र काम में शामिल होने का रास्ता खुल गया है। दरिद्रनारायण की सेवा के लिए किये गये उनके आवाहन पर मैं संपत्ति-दान-यज्ञ में शरीक होता हूँ और संपत्तिदान-यज्ञ की योजना के अनुसार उसमें अपना हिस्सा अर्पण कर उसका विनियोग करता रहूँगा तथा उसके खर्च का वार्षिक हिसाब सर्व-सेवा-संघ को भेजता रहूँगा।

अपने इस संकल्प का अंतर्दार्मी रूप में मैं ही साक्षी हूँ और अपनी अंतरात्मा से वफादार रहूँगा। ईश्वर मुझे बल दे।

मेरी वर्तमान आय का अंदाज रुपये $\frac{\text{वार्षिक}}{\text{मासिक}}$

फिलहाल हिस्से का परिमाण आय का हिस्सा वाँ
तारीख

हस्ताक्षर

पूरा नाम और पता _____

[सूचना : दानपत्र भरकर प्रांतीय भूदान-समिति के दफ्तर में भेज दिया जाय।]

सर्वोदय के सप्त ग्रंथ

सत्य के प्रयोग

गांधीजी—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पूज्य गांधीजी की आत्मकथा ।

मंगल प्रभात

गांधीजी—नवजीवन अहमदाबाद-१४ आश्रमजीवन के व्रतों पर गांधीजी के मूलग्राही विचार ।

हिन्द स्वराज्य

गांधीजी—नवजीवन अहमदाबाद-१४ स्वराज का गांधीजी का यह चित्र १९०८ में खींचा गया था, लेकिन आज भी क्रान्तिकारी युवक उससे प्रेरणा पा सकते हैं ।

जड़ मूल से क्रान्ति

किशोरलाल मशरूवाला—नवजीवन अहमदाबाद-१४ इस किताब में कुछ ऐसे मौलिक विचार हैं जो बड़े बड़े महारथियों को भी अन्तःनिरीक्षण की प्रेरणा देंगे ।

गीता प्रवचन

विनोबा—सस्ता साहित्य मण्डल—नई दिल्ली, विनोबा का पूरा जीवन दर्शन इसमें मनोरम शैली में पाया जाता है ।

स्वराज्य शास्त्र

विनोबा—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, आधुनिक राजनीति पर विनोबा के गहरे विचार जिसमें पक्षरहित लोक नीति के विचार का मूल है ।

सर्वोदय

गांधीजी तथा अन्य लेखक—नवजीवन अहमदाबाद-१४ सर्वोदय सम्बन्धी संघ संकलित लेख ।

[ये किताबें जिसने नहीं पढ़ीं उसने सर्वोदय के बारे में कुछ नहीं पढ़ा ।]

सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना

कार्यकर्ताओं, जिज्ञासुओं और जनता में सर्वोदय-विचार के प्रचार की दृष्टि से 'सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना' शुरू की गयी है, जिसके अनुसार लोगों को कम से कम मूल्य में स्वाध्याय योग्य उत्तम और नवीनतम साहित्य नियमित रूप से मिलता रहेगा। योजना की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है —

१. **सभासद**—संस्था या व्यक्ति हर कोई सभासद बन सकेगा।

२. **शुल्क**—इसका वार्षिक शुल्क दस रुपये है।

३. **सुविधाएँ**—(अ) वर्ष भर तक भूदान-यज्ञ, गया (हिन्दी) या उसके बदले भूदान संबंधी विभिन्न प्रांतों से निकलनेवाले साप्ताहिकों या पाक्षिकों में से एक भाषा का एक पत्र दिया जा सकेगा, जिसका शुल्क प्रायः तीन रुपया रहेगा। तीन रुपया से कम शुल्क की पत्रिका लेने पर शेष रुपयों का साहित्य उसी भाषा का मिलेगा और अधिक शुल्क की लेने पर तीन रु० से जितना अधिक शुल्क होगा वह सदस्यों से लिया जायगा।

(आ) बाकी सात रुपये में हिन्दी भाषा का साहित्य दिया जायगा जिसकी पृष्ठ-संख्या लगभग २५०० क्राउन-साइज (२० × ३० × १६) की होगी।

४. **योजना का वर्ष**—योजना का वर्ष १ जनवरी से ३१ दिसंबर तक माना गया है। सदस्य चाहे जब बन सकते हैं। साहित्य सब सदस्यों को समान रूप से दिया जायगा। भूदान पत्रिका सदस्य बनने के माह से वर्ष भर मिलती रहेगी।

५. **पूरी जानकारी प्राप्त करने का तथा शुल्क भेजने का पता**—

संचालक, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

राजघाट, काशी (बनारस)

नोट : जो सज्जन दूसरों को अपनी ओर से शुल्क देकर योजना का सदस्य बनाने उनका पूरा शुल्क दस रुपया और जो स्वयं सदस्य बनें वे उनका आधा यानी पाँच रुपया संपत्तिदान माना जायगा।

हमारा साहित्य

संपत्तिदान-यज्ञ—जाजूजी

श्रमदान—शिवाजी

विनोबा के साथ—निर्मला देशपांडे

भूदान-दीपिका—विमला

पावन-प्रसंग—मृदुला मूंदड़ा

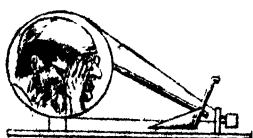
जीवनदान—जयप्रकाश नारायण

क्रांति का अगला कदम—दादा धर्माधिकारी

साम्ययोग की राह पर—दादा धर्माधिकारी

साहित्यिकों से—विनोबा

त्रिवेणी—विनोबा



मूल्य
आठ आना
